PG HN S1-03 (DSC)

TWO YEAR POSTGRADUATE PROGRAMME

(CBCS and Accordance with NEP 2020)

भारतीय काव्यशास्त्र

First Semester

(BHARATIYA KAVYASHASTRA)

Padmanath Gohainbaruah School of Humanities

KRISHNA KANTA HANDIQUI STATE OPEN UNIVERSITY

विषय विशेषज्ञ

प्रोफ़ेसर दिलीप कुमार मेधी, हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, असम

प्रोफ़ेसर अमूल्य बर्मन, हिंदी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय (सेवानिवृत्त विभागाधक्ष्य), असम

प्रोफ़ेसर भूषण पाठक, अध्यक्ष्य, बी. एस. कॉलेज, हाउली, बरपेटा, असम

पाठ्यक्रम समन्वयक : डॉ. प्रांजल कुमार नाथ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

एसएलएम् तैयारी टीम

Units	**Contributors**
इकाइयाँ	**योगदानकर्ताओं के नाम**
1	डॉ. पल्लबी दास, अध्यक्ष्य, आदर्श विद्यालय, हाजो
2–3	परीक्षित नाथ, सहायक अध्यापक, दुमदुमा महाविद्यालय
4, 8–11, 14	डॉ प्रांजल कुमार नाथ
5–7	राजू सिंह, शोधार्थी, असम विश्वविद्यालय, सिलचर
12–13	डॉ. नवकांत दास, सहायक अध्यापक, रंगापारा महाविद्यालय

Editorial Team

Content : डॉ. प्रांजल कुमार नाथ, सहायक अध्यापक कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय,

Language : डॉ. अब्दुल लतीफ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेन्दिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय,असम

Structure & Format : डॉ. प्रांजल कुमार नाथ, सहायक अध्यापक, कृष्णकांत हेंदिक राज्यिक मुक्त विश्वविद्यालय, असम

November, 2024 **ISBN :**

This Self Learning Material (SLM) of the Krishna Kanta Handiqui State University is made available under a Creative Commons Attribution-Non Commercial-ShareAlike4.0 License (International) : http.//creativecommons.org/licenses/by-nc-sa/4.0

Printed and published by Registrar on behalf of the Krishna Kanta Handiqui State Open University.

Headquarters: Patgaon, Rani Gate, Guwahati-781017
City Office: NH 37, Resham Nagar, Khanapara, Guwahati-781022 Web: www.kkhsou.in

CONTENTS

		Page No.
इकाई 1 :	**काव्य का स्वरूप** काव्य परिभाषा एवं स्वरूप, काव्य के भेद।	7-14
इकाई 2 :	**काव्य का लक्षण** काव्य लक्षण से तात्पर्य, संस्कृत काव्य-लक्षण, अंग्रेजी काव्य-लक्षण।	15-19
इकाई 3 :	**काव्य हेतु** अर्थ, परिभाषा, काव्य हेतु संबंधी विद्वानों के मत।	20-25
इकाई 4 :	**काव्य प्रयोजन** स्वरूप, काव्य प्रयोजन, इसके संबंधित विद्वानों के मत।	26-31
इकाई 5 :	**रस की अवधारणा एवं स्वरूप** रस का स्वरूप, रस के अवयव ।	32-37
इकाई 6 :	**रस निष्पत्ति एवं विविध आचार्यों के मत** रस निष्पत्ति से तात्पर्य, रस निष्पत्ति संबंधी आचार्यों के मत।	38-44
इकाई 7 :	**साधारणीकरण** साधारणीकरण से तात्पर्य, साधारणीकरण के संबंध में विद्वानों का मत।	45-52
इकाई 8 :	**अलंकार संप्रदाय-1** अवधारणा एवं स्वरूप, अलंकरावादी आचार्य और उनकी स्थापनाएँ।	53-56
इकाई 9 :	**अलंकार संप्रदाय-2** अलंकार के विविध प्रकार के उदाहरण सहित परिचय।	57-67
इकाई 10 :	**रीति संप्रदाय** रीति की अवधारणा, रीति संप्रदाय की प्रमुख स्थापनाएँ।	68-71
इकाई 11 :	**वक्रोक्ति संप्रदाय** अवधारणा एवं स्वरूप, वक्रोक्ति के भेद, वक्रोक्ति एवं अभिव्यंजना।	72-80
इकाई 12 :	**ध्वनि संप्रदाय-1** ध्वनि का स्वरूप एवं अवधारणा, ध्वनि संप्रदाय के विकास और उनके प्रवर्तक।	81-85
इकाई 13 :	**ध्वनि संप्रदाय-2** शब्दशक्ति, व्यंजना के आधार पर ध्वनि काव्य के भेद।	86-91
इकाई 14 :	**औचित्य संप्रदाय** स्वरूप, प्रमुख स्थापनाएँ, औचित्य भेद।	92-98

विषय परिचय

आपके समक्ष एम.ए. हिंदी के दो वर्षीय पाठ्यक्रम का तीसरा मूल पेपर (सेमेस्टर I) **'भारतीय काव्यशास्त्र'** अध्ययन के लिए प्रस्तुत है। यह पेपर भारतीय काव्यशास्त्र पर आधारित है। काव्यशास्त्र कवियों के मन स्थिति से उद्भासित कल्पना, दर्शन और विज्ञान के सिद्धांतों की ज्ञानराशि है। जिसका मूल विषय जीवन और जगत के अलावा विभिन्न अलौकिक एवं लौकिक चीजे हैं। इस पेपर में चौदह इकाइयाँ हैं।

इकाई 1 का शीर्षक **'काव्य का स्वरूप'** है। इस इकाई में काव्य की परिभाषा, भेद, काव्य के स्वरूप और काव्यशास्त्र के अर्थ के बारे में आलोचना की गयी है।

संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने प्राय: कवि-कर्म को काव्य कहा है, अत: 'कवि' शब्द से ही 'काव्य' उत्पत्ति मानी जाती है। **'कवे: कर्म काव्यम'**- अर्थात् कवि कर्म ही काव्य है। शब्द और अर्थ को एक साथ काव्य का शरीर माना जाता है।

इकाई 2 का शीर्षक **'काव्य का लक्षण'** है। इस इकाई में काव्य-लक्षण, काव्य-दोष आदि पर चर्चा की गयी है। हिंदी, संस्कृत और पाश्चात्य विद्वानों के काव्य लक्षणों पर दिए गए मंतव्यों को भी इस इकाई में शामिल किया गया है।

इकाई 3 'काव्य हेतु' शीर्षक से है। इस इकाई में काव्य हेतु का अर्थ और स्वरूप के अतिरिक्त प्रमुख काव्य हेतुओं पर आलोचना की गयी है तथा काव्य हेतुओं के बारे में संस्कृत विद्वानों के विचारों को स्पष्ट किया गया है।

इकाई 4 का शीर्षक **'काव्य प्रयोजन'** है। काव्य प्रयोजन का अर्थ है- काव्य रचना से प्राप्त फल। इस इकाई में प्रमुख काव्य प्रयोजन और काव्य प्रयोजन को लेकर विभिन्न विद्वानों के मतों को उदाहरण सहित पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

इकाई 5 'रस की अवधारणा एवं स्वरूप' शीर्षक से है। इस इकाई में रस के अवयव, रस के स्वरूप और स्वरूप को लेकर विद्वानों का मत, रस का महत्व, रस की विशेषताओं तथा आधुनिक आलोचकों की दृष्टि में रस की प्रासंगिकता पर विचार किया गया है।

इकाई 6 का शीर्षक है **'रस निष्पत्ति एवं विविध आचार्यों के मत'**। रस का अर्थ है 'आस्वाद'। 'रस्यते आस्वाद्यते इति रस:। भरतमुनि के अनुसार- विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पति होती है। इस इकाई में रस-निष्पत्ति क्या है, रस निष्पत्ति पर विभिन्न विद्वानों के विचार, रस के अंग और रस निष्पत्ति की प्रासंगिकता के बारे में आलोचना की गयी है।

इकाई 7 'साधारणीकरण' शीर्षक से है। 'साधारणीकरण' रस सिद्धांत का मूल आधार है। साधारणीकरण का अर्थ है- सामान्यीकरण अर्थात् जो साधारण नहीं है, उसे साधारण कर देना। 'असाधारणस्य साधारणीकरण इति साधारणीकम्।' इस इकाई में साधारणीकरण का अर्थ, अवधारणा और साधारणीकरण पर विभिन्न आचार्यों के मतों को स्पष्ट किया गया है।

इकाई 8 'अलंकार संप्रदाय-1' शीर्षक से है। अलंकार कविता के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अलंकार उपयोगी है। चमत्कारपूर्ण उक्ति को हम अलंकार कह सकते हैं। इस इकाई में अलंकार का अर्थ, स्वरूप, प्रकार और इसके प्रमुख आलोचकों के दृष्टिकोण प्रस्तुत है।

इकाई 9 'अलंकार संप्रदाय-2' शीर्षक से है। इस इकाई में अलंकार के भेद और अलंकार के विविध रूपों पर आलोचना की गयी है।

इकाई 10 का शीर्षक **'रीति संप्रदाय'** है। मार्ग, पथ, प्रणाली, पद्धति आदि रीति के पर्यावाची शब्द है। काव्यशास्त्र में

रीति से तात्पर्य है काव्यरीति, काव्यमार्ग अथवा काव्यपथ आदि। इस इकाई में रीति के स्वरूप और अवधारणा, काव्यशास्त्र में रीति की आवश्यकता और रीति संबंधी विद्वानों के मतों पर भी आलोचना की गयी है।

इकाई 11 'वक्रोक्ति संप्रदाय' शीर्षक से है। वक्रोक्ति का उल्लेख काव्यशास्त्र के अतिरिक्त बाणभट्ट (छठी शताब्दी) के ग्रन्थ कादंबरी में भी मिलता है, जहाँ राजा शूद्रक को 'वक्रोक्ति-निपुण' कहा गया। कुंतक ने काव्य-निर्माण की अपूर्व कुशलता से लोकोत्तर चमत्कार प्राण विचित्र कथन को ही वक्रोक्ति कहा है। इस इकाई में वक्रोक्ति के स्वरूप, अवधारणा और साहित्य में वक्रोक्ति के महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

इकाई 12 'ध्वनि संप्रदाय-1' शीर्षक से है। ध्वनि सिद्धांत के समर्थक आचार्य 'ध्वनि' को काव्य की आत्मा स्वीकारा है। ध्वनि शब्द का सामान्य अर्थ है कानों में सुनाई देनेवाला नाद या आवाज। जहाँ वाच्यार्थ प्रमुख न होकर व्यंग्यार्थ प्रमुख होता है, काव्यशास्त्र में उसे ही ध्वनि माना गया है। इस इकाई में ध्वनि संप्रदाय के विकास, स्वरूप और अवधारणाओं पर विचार किया गया है।

इकाई 13 का शीर्षक 'ध्वनि संप्रदाय-2' है। इस इकाई के अंतर्गत ध्वनिकाव्य के भेद और अभिधा, व्यंजना तथा लक्षणा शब्दशक्ति के अतिरिक्त गुणीभूत व्यंग्य के बारे में आलोचना की गयी है।

इकाई 14 अर्थात् अंतिम इकाई का शीर्षक **'औचित्य संप्रदाय'** है। औचित्य सिद्धांत को भारतीय काव्यशास्त्र अंतिम सिद्धांत भी माना जाता है। आचार्य क्षेमेद्र अनुसार- जो पदार्थ जिसके सदृश अथवा अनुरूप होता है, उसे प्राचीन आचार्यों ने उचित कहा है; इसी उचित को विद्वानों ने औचित्य कहा है और यही काव्य का जीवन है -

'उचित प्राहुराचार्य: साद शं किल यस्त यात।
उचित छ यो भागस्तदौचित्य प्रचक्षते।।'

इस इकाई के अंतर्गत औचित्य का अर्थ और स्वरूप, भेद तथा औचित्य संप्रदाय के प्रवर्तक और समर्थक आचार्यों के विचारों को स्पष्ट किया गया है।

प्रत्येक इकाई में **'अपनी प्रगति जांचें'** शीर्षक से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न को अभ्यास प्रश्न के अतिरिक्त शामिल किया गया है और प्रत्येक प्रश्न के उत्तर का रूपरेखा 'प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)' शीर्षक से सारांश के बाद प्रस्तुत किया गया है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों में नए-नए प्रश्न और उन प्रश्नों के समाधान के लिए आत्मविश्वास पैदा करना है तथा प्रत्येक इकाई में बॉक्स के अंदर **'महत्वपूर्ण बिंदु'** शीर्षक से कुछ तथ्यों को सम्मिलित किया गया है। इससे विद्यार्थी इकाई के महत्वपूर्ण तथ्यों से आसानी से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक इकाई के अंत में **'अधिक जानने के लिए पढ़ें'** शीर्षक से कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों की सूची दी गयी है, जो प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अत्यावश्यक है। विषय की गहरी जानकारी के लिए सारी पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं।

इकाई 1 : काव्य का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 काव्य परिभाषा एवं स्वरूप

1.3.1 संस्कृत आचार्यों की परिभाषाएँ

1.3.2 हिंदी आचार्यों की परिभाषाएँ

1.3.3 पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ

1.4 काव्य के भेद

1.5 सारांश

1.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

1.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1.8 अभ्यास प्रश्न

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- काव्यशास्त्र के अर्थ से परिचय प्राप्त करेंगे।
- काव्य के भेद एवं परिभाषा को जान सकेंगे।
- काव्य के स्वरूप से अवगत होंगे।

1. 2 प्रस्तावना

काव्यशास्त्र कवियों के मन स्थिति से उद्भासित कल्पना, दर्शन और विज्ञान के सिद्धांतों की ज्ञानराशि है। जिसका मूल विषय जीवन और जगत के अलावा विभिन्न अलौकिक एवं लौकिक चीजे हैं। समय और परिस्थितियों के अनुसार काव्य और साहित्य का कथ्य तथा शिल्प समय-समय पर बदलता रहा है। दूसरी ओर कविता का मूल विषय भी जीवन और जगत से संबंधित होने के कारण, परिवर्तनशील शाश्वत सत्य के साथ कविता का भी स्वरूपों में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है।

प्राचीन आचार्यों ने, विद्वानों ने उस परिवर्तन को जाना, समझा और उसकी व्याख्या अपने-अपने ढंग से की। जिसका प्रारंभ भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' से होकर विभिन्न वादों अथवा सम्प्रदायों में इसका विकास हुआ है।

1.3 काव्य परिभाषा एवं स्वरूप

काव्य का स्वरूप बहुत ही व्यापक है। जितना व्यापक है, उतना सूक्ष्म भी। इसी कारण इसे लक्षण की परिधि में बाँधना अत्यंत दुरूह है। संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने प्राय: कवि-कर्म को काव्य कहा है, अत: 'कवि' शब्द से ही 'काव्य' उत्पत्ति मानी जाती है।

'कवे: कर्म काव्यम' - अर्थात् कवि कर्म ही काव्य है। शब्द और अर्थ को एक साथ काव्य का शरीर माना जाता है।

विद्वानों ने काव्य को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया है-

1.3.1 संस्कृत आचार्यों की परिभाषाएँ

क) काव्य की सबसे प्राचीन परिभाषा अग्निपुराण (अग्निपुराण, 337 अध्याय, 607 श्लोक) की मानी जाती है-

'संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुरदलंकार गुणवद्दोषवर्जितम।।'

संक्षेप में इष्ट अर्थ को प्रकट करनेवाली पदावली से युक्त ऐसा वाक्य काव्य है, जिसमें अलंकार प्रकट हों और जो दोष से रहित और गुण से युक्त हो।।

ख) इसके बाद भामह का नाम आता है। संस्कृत आचार्य भामह ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है-

'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।'

अर्थात् शब्द और अर्थ का सहभाव ही काव्य है। यह परिभाषा अत्यंत व्यापक है, जिसमें काव्य के अतिरिक्त शास्त्र, इतिहास, वार्तालाप आदि समाहित हो जाते हैं।

ग) संस्कृत आचार्य दंडी ने अपने ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा है-

'शरीरं तावदिष्टार्थं व्यवच्छिना पदावली।'

अर्थात् इष्ट अर्थ से युक्त पदावली को ही काव्य का शरीर माना जाता है। स्पष्ट है कि दंडी केवल शब्दार्थ को ही काव्य नहीं मानते क्योंकि उनके अनुसार शब्दार्थ तो काव्य का शरीर मात्र है, आत्मा नहीं। दंडी अलंकारवादी आचार्य होने के नाते काव्य का समस्त सौन्दर्य अलंकार को ही मानते हैं। उन्होंने अलंकार को काव्य की शोभा प्रदान करनेवाला धर्म स्वीकारते हुए लिखा है-

'काव्यशोभाकारन् धर्मान् आंकरान् प्रचक्षते।'

घ) 'रीतिरात्मा काव्यस्य' रीति को काव्य की आत्मा मानने वाले वामन ने काव्य का कोई स्वतंत्र लक्षण नहीं दिया है, किंतु रीति वर्णन में उनके विचार उपलब्ध होते

हैं। उनके अनुसार सौंदर्य के कारण काव्य ग्राह्य होते हैं और अलंकार को ही सौंदर्य कहते हैं।

ङ) वामन के बाद आनंदवर्धन ने अपने ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' में शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर मानते हुए काव्य की आत्मा ध्वनि को माना है।

'काव्यस्यात्मा ध्वनि।'

च) मम्मट ने भी अपने ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' में काव्य की परिभाषा देते हुए कहा है-

'ततदोषौ शब्दार्थौ सगुणावलंकृती पुनः क्वापि।'

अर्थात् काव्य का मतलब वह शब्द और अर्थ है जो दोष से रहित, गुण से युक्त और कभी-कभी अलंकार से मंडित भी हो वही काव्य है।

छ) आचार्य हेमचंद्र द्वारा दी गयी परिभाषा भी इसी पद्धति पर है-

''अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम।''

इसमें एक साथ दोषहीनता, गुण और अलंकार अनिवार्य हो जाते हैं।

ज) विश्वनाथ ने भी अपने ग्रन्थ 'साहित्य दर्पण' में काव्य के सन्दर्भ में कहा है-

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।'

अर्थात् विश्वनाथ के अनुसार- रस से पूर्ण वाक्य ही काव्य है। जिसमें रस की अनिवार्यता सिद्ध होती है, लेकिन इस पर बहुत मतभेद है।

झ) पंडितराज जगन्नाथ ने अपने ग्रन्थ 'रसगंगाधर' में काव्य को निम्न शब्दों में परिभाषित किया है-

'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।'

रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही जगन्नाथ के अनुसार काव्य है।

1.3.2 हिंदी विद्वानों की परिभाषाएँ

हिंदी में काव्यशास्त्रीय चिंतन का प्रारंभ रीतिकाल से होता है। रीति ग्रंथों में काव्य के स्वरूपों पर प्रकाश डाला गया है, पर मौलिकता के अभाव ने इसे पूर्णता नहीं दी है। आचार्य **केशवदास** ने काव्य की कोई परिभाषा नहीं दी, पर वे काव्य की शोभा अलंकार से ही मानते हैं। उनका कथन है-

'यद्यपि जाति सुलच्छनी; सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिना न सोहई, कविता बनिता मित्त।।'

केशव के विचार से रस, छन्द और शब्द-सौन्दर्य के साथ अलंकार होना आवश्यक है। रीतिकाल के प्रारंभिक आचार्य चिंतामणि ने 'कविकल्पतरु' में कविता के लक्षण निम्न प्रकार दिया है-

'सगुनावालंकरण सहित, दोषरहित जो होइ।
शब्द अर्थ वारौ कवित, बिबुध कहत सब कोइ।।'

कुलपति मिश्र ने मम्मट के 'काव्य-प्रकाश' का पूर्ण आधार ग्रहण करते हुए, अपने ग्रन्थ 'रस-रहस्य' में अपना मत व्यक्त किया हैं-

'दोष रहित अरु गुण सहित, कछुक अल्प अलंकार।
सबद अर्थ सो कवित है, ताको करो विचार।'

आधुनिक कवि **जयशंकर प्रसाद** ने काव्य को आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति माना है। उनका विचार है- 'कवि आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है, जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेम रचनात्मक धारा है।'

महादेवी वर्मा ने काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा है- 'कविता कवि-विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उससे वैसी ही भावनाएँ किसी दुसरे के ह्रदय में अभिभूत होती हैं।'

हिंदी के प्रमुख विद्वान **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने अपने निबंध 'चिंतामणि' भाग 1 के निबंध 'कविता क्या है?' में काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है- 'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार ह्रदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है।'

बाबु गुलाबराय ने काव्य पर आलोचना करते हुए लिखा हैं 'काव्य संसार के प्रति कवि की भाव प्रधान मानसिक प्रतिक्रियाओं की श्रेय को प्रेय देनेवाली अभिव्यक्ति है।'

काव्य के स्वरूपों को लेकर पाश्चात्य विद्वानों ने भी अपने-अपने मत व्यक्त किए हैं। जिनमें से कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैं-

1.3.3 पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ

क) अरस्तु ने काव्य को एक कला मानते हुए कहा हैं- "It is an initiation by means of words." कविता प्रकृति का संवेदनात्मक एवं लयात्मक अनुकरण है।

ख) मैथ्यू अर्नाल्ड ने काव्यों को सर्वाधिक सुखद तथा पूर्ण वक्तव्य माना है, जो मानवीय भाषा का चरम उत्कर्ष है। उनकी काव्य विषयक मान्यता है- Poetry is a criticism of life under the conditions fixed for such criticism by the laws of poetic truth and poetic beauty."

ग) कॉलरिज के अनुसार- "Poetry is the best words in the best order." अर्थात् सर्वोत्तम शब्द अपने सर्वोत्तम कर्म में कविता है।

घ) वर्डस्वर्थ ने काव्य में कल्पना के स्थान पर भावनाओं को महत्व दिया है- "Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings, it

takes its origin from emotions recollected in tranquility." अर्थात् कविता प्रवल अनुभूतियों का सहज उद्रेक है, जिसका स्रोत शांति के समय में स्मृत मनोवेगों से फूटता है।

1.4 काव्य के भेद

काव्य के मूल रूप से दो भेद होते हैं- पद्य और गद्य। छंदबद्ध रचना को पद्य कहलाती है और छंदहीन रचना को गद्य। पद्य में छंदों के नियमों का पालन होता है, उसके अंतर्गत एक नियमित गति या लय का निर्वाह होता है। लेकिन गद्य में अर्थ की स्वाभाविकता के लिए व्याकरण के नियमों का पालन होता है।

काव्य साहित्य की वह विधा है, जिसमें किसी कहानी या मनोभाव को कलात्मक रूप से किसी भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। कथानक या क्रमबद्धता के आधार पर काव्य के तीन भेद माने जाते हैं - प्रबंध काव्य, निबंध काव्य और मुक्तक काव्य।

क) प्रबंध काव्य : प्रबंध काव्य वह पद्य-रचना है, जिसके छंद कथासूत्र की व्यवस्था से पिरोये रहते हैं, उसके छंदों के क्रम को बदला नहीं जा सकता।

ख) निबंध काव्य : निबंध काव्य वह पद्य रचना है, जिसके अंतर्गत छंद किसी विचार-सूत्र या भावधारा से व्यवस्थित रहते हैं। इस रचना में भाव या विचार का विकास क्रम क्रमशः दिखलाई देता है, इसी की निबद्धता रहती है।

ग) मुक्तक काव्य : वह पद्य रचना है, जिसके छंद स्वतः पूर्ण और स्वतंत्र रहते हैं और किसी भी क्रम से संचालित किए जा सकते हैं। वे क्रम के किसी आतंरिक नियम से बंधे नहीं होते।

प्रबंधकाव्यः

प्रबंध काव्य के दो भेद हैं - एक महाप्रबंध और दूसरा खंड-प्रबंध या खंडकाव्य। महाप्रबंध के भी तीन भेद हैं- पुराण, आख्यान और चरित।

पुराण काव्यः

पुराण वह महाप्रबंध है, जिसके अंतर्गत विभिन्न अंगों और स्कंधों में सृष्टि के प्रारंभ और विकास की युग-युगंतारव्यापी कथा कही गई हो। इसमें ईश्वर के अवतारों, अवतारी पुरूषों, महात्माओं तथा ऋषिमुनियों की अनेक कथाएँ वर्णन किए जाते हैं, जिनके अंतर्गत भक्ति की महिमा तथा सज्जनों का विजय और दुर्जनों का पराजय दिखाये जाते हो।

आख्यान काव्य :

आख्यान वह विस्तृत प्रबंध है, जिसमें प्रेम, नीति, भक्ति, वीरता आदि के निरूपण के लिए काल्पनिक रोचक कथानक का सारस एवं मधुर शैली में वर्णन किया किया गया हो। इसके अंतर्गत विभिन्न खंड या प्रसंग होते हैं। इसके प्रमुख भेद- प्रेमाख्यान, नित्याख्यान, साहित्यिक आख्यान आदि।

चरित काव्य:

यह भी एक प्रकार का वर्णनात्मक प्रबंध है। इसमें रोचक काव्यमय शैली में किसी व्यक्ति का, विशेषरूप से वीर या महापुरूष का, घटनाक्रम के अनुसार जीवन चरित लिखा जाता है।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. मुत्तक काव्य किसे कहते हैं?

महाकाव्य:

महाकाव्य के स्वरूप और धारणाओं पर बहुत विवेचन हुआ है। यह एक ऐसी विधा है जिसमें उच्च गौरव, व्यापक प्रभाव, विस्तृत कथावस्तु और सभी रसों का वर्णन हुआ हो। महाकाव्य में विविधता और यथार्थता दोनों का ही होना आवश्यक है। जिसका उद्देश्य- धर्म, काम, अर्थ, मोक्ष चतुर्वर्ग की प्राप्ति मानी गयी है।

महाकाव्य की कथा इतिहास अथवा किसी महापुरूष सज्जन की वास्तविक जीवन गाथाओं पर आधारित होता है। जिसमें कथा का प्रारंभ आशीर्वचन, मंगलाचरण आदि से होकर स्वर्ग के अंत में आगामी स्वर्ग की कथा का सूचना देने तक कार्य अनिवार्य होता है।

खंडकाव्य:

प्रबंध काव्य का दूसरा भेद खंडकाव्य या खंडप्रबंध है। खंडकाव्य में कथावस्तु सम्पूर्ण न होकर उसका एक अंश का वर्णन होता है। खंडकाव्य में प्राय: जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना या दृश्य का मार्मिक उद्घाटन होता है, जहाँ अन्य प्रसंग गौण रहत हैं। खंडकाव्य के दो भेद हैं- एक संघात अथवा एकार्थ खंडकाव्य, जिसमें एक प्रकार के छंदों में ही एक घटना या दृश्य का वर्णन किया जाता है। दूसरा है अनेकार्थ खंडकाव्य, जिसमें अनेक प्रकार के छंदों में विविध भावों के साथ जीवन के एक अंश का चित्रण किया जाता है। महाकाव्य के समान इसका विस्तार नहीं होता। जैसे-यशोधरा।

मुक्तक-काव्य:

मुक्तक काव्य वह है, जिसके अंतर्गत रचना के विभिन्न छंदों में किसी प्रकार की विचारधारा या कथा-धारा अथवा श्रृंखला न पायी जाय और प्रत्येक छंद स्वत:पूर्ण और निरपेक्ष हो।

हिंदी काव्य के अंतर्गत सतसई, शतक, पचासा, पचीसी, दशक, अष्टक, पंचक आदि के रूप में मुक्तक देखे जाते हैं।

निबद्ध या निबंध-काव्य:

हिंदी काव्य के क्षेत्र में निबद्ध या निबंध-काव्य का विकास देखने को मिलता है। इन्हें प्रबंध-काव्य नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इनमें कथानक का विकास महत्व नहीं रखता, यह

प्राय: विचारधारा या भावधारा प्रधान होता है। उदाहरण के तौर पर तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' प्रसाद की 'प्रलय की छाया' आदि।



1.5 सारांश

वस्तुत: संस्कृत, हिंदी तथा पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य के अन्तरंग तथा बहिरंग तत्वों के आधार पर काव्य को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। विद्वान काव्य के अनेक भेद स्वीकार करते हैं। उन भेदों को देखते हुए उसके स्वरूप के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि कविता कवि-विशेष की भावनाओं का चित्रण है, जहाँ हृदय और बुद्धि का सुन्दर सामजंस्य दिखाई पड़ता है। समय, परिस्थिति और परिवर्तनशील समाज व्यवस्था ने काव्य के स्वरूप में भी परिवर्तन ला रहा है।



1.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : मुक्तक काव्य वह है, जिसके अंतर्गत रचना के विभिन्न छंदों में किसी प्रकार की विचारधारा या कथा-धारा अथवा श्रृंखला न पायी जाय और प्रत्येक छंद स्वत:पूर्ण और निरपेक्ष हो।

समझने के लिए देखें '**मुक्तक काव्य**'।



1.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. काव्यालोचन- ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री', आर्य बुक डिपो, दिल्ली।
3. काव्यदर्पण- रामदहीन मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. भारतीय काव्यशास्त्र (भाग 1 और भाग 2)- बलदेव उपाध्याय, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।



1.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए-

1. भामह के अनुसार काव्य क्या है ?
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने काव्य को किस रूप में परिभाषित किया है ?
3. मुक्तक काव्य किसे कहते हैं ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए-

1. काव्य का स्वरूप क्या है- विस्तृत रूप से लिखिए।
2. काव्य संबंधी विभिन्न विद्वानों द्वारा दिए गए मतों पर आलोचना कीजिए।
3. काव्य को परिभाषित करते हुए इसके विभिन्न अंगों पर चर्चा कीजिए।
4. काव्य किसे कहते हैं ? काव्य के अवधाराणाओं पर पर विचार प्रकट कीजिए।
5. महाकाव्य से आप क्या समझते हैं और महाकाव्य की क्या क्या विशेषताएँ हैं ?

*** ***** ***

इकाई 2 : काव्य का लक्षण

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 संस्कृत काव्य-लक्षण

2.4 अंग्रेजी काव्य-लक्षण

2.5 हिंदी काव्य-लक्षण

2.6 सारांश

2.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

2.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

2.9 अभ्यास प्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप -

- काव्य के लक्षणों को जान सकेंगे।
- काव्य में क्या-क्या दोष होते हैं? उसको जानेंगे।
- काव्य के आदर्श लक्षणों की क्या विशेषताएँ हैं? उसके बारे में अवगत होंगे।

2.2 प्रस्तावना

काव्य की उत्पत्ति के समय से ही उसके लक्षणों पर विचार होता रहा है। असल में 'लक्षण' संस्कृत का एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ सरल तथा संक्षिप्त परिभाषा है।

विद्वानों और कवियों ने काव्य के अनेक लक्षण निर्धारित किए हैं। यद्यपि काव्य का स्वरूप इन लक्षणों में नहीं बंध पाता, फिर भी इन लक्षणों के अध्ययन से हम उसके विविध रूपों और तत्वों को समझ सकते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र से लेकर हिंदी तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य के लक्षणों पर विद्वान अपना मत व्यक्त किये हैं। जिनमें से कुछ लक्षणों की आवश्यकता अभीष्ट है। उदाहरण- अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोषों से बचाना, काव्य को सुबोध और जितना हो सके संक्षिप्त रूप में रखना, पारिभाषिक शब्दावली और व्याख्या की अपेक्षा उत्तम अथवा सरल शब्दों में कल्पना की अभिव्यक्ति करना आदि। नीचे काव्य लक्षणों पर विचार प्रस्तुत हैं-

2.3 संस्कृत काव्य-लक्षण

संस्कृत का प्रथम काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में भरतमुनि ने काव्य के छत्तीस लक्षण बताये हैं। जिसमें सात लक्षण मुख्य हैं-

'मृदुललितपदाध्यं गूढ़शब्दार्थहीनम्
जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम
बहुरसकृतमार्ग संधिसंधानयुक्तम्
स भवति शुभकाव्यं नाटकप्रेक्षकाणम्'

1. मृदुललित पदयोजना
2. गूढ़शब्दार्थहीनता
3. सर्वसुगमता
4. युक्तिमत्ता
5. नृत्योपयोगयोग्यता
6. नानाविध रसयोजनाओं से परिपूर्ण तथा
7. संधि युक्तता।

लेकिन यह काव्य के पूर्ण लक्षण न होकर काव्य के प्रशस्ति मात्र है। इसमें नाटक के अंतर्गत प्राप्त काव्य के तत्वों का निरूपण है।

वकोक्ति सिद्धांत के प्रणेता कुंतक ने काव्य का लक्षण इस प्रकार निर्धारित किए हैं-

'शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बंधे व्यावास्थितौ काव्यं तद्विदाहनादिकारिणी।।'

अर्थात् काव्य मर्मज्ञों को आनंद देनेवाले रम्य कवि व्यापार से युक्त रचना व्यवस्थित शब्द और अर्थ मिलकर बनता है। इनके लक्षण में काव्य के विशिष्ट रूप का ही संकेत है, समग्रता का नहीं। इसमें स्पष्टता का अभाव है।

जयदेव ने 'अनुलंकृति पुनःक्वापि' की आलोचना करते हुए लिखा है कि काव्य निसर्गत अलंकारयुक्त मानने का प्रश्न ही नहीं उठता। उनका मत है कि जो काव्य को अलंकार विहीन मानता है, वह अग्नि को उष्णता विहीन क्यों नहीं मान लेता।

'अंगीकरोति य काव्यं शब्दार्थनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती।।'

संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य जगन्नाथ ने काव्य को शब्दनिष्ठ तथा रमणीय अर्थ का वाहक माना है। उनका काव्य लक्षण इस प्रकार है-

'रमणीयार्थप्रतिपादक- शब्द काव्यम।'

अर्थात् रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द ही काव्य है। इस लक्षण में कुछ लोग आपत्ति उठाते हैं कि काव्य के अंतर्गत शब्द में सदैव अर्थ की रमणीयता नहीं होती, पुरे वाक्य से रमणीयता प्रतिपादित होती है। अतः रमणीय अर्थ देनेवाला वाक्य, काव्य होना चाहिए।

2.4 अंग्रेजी काव्य-लक्षण

यहाँ हम अंग्रेजी में दिये हुए काव्य के कतिपय लक्षणों पर विचार करेंगे। 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' में उल्लेख है- "Poetry: art work of the poet." कवि का कार्य कला, काव्य है। यह लक्षण अस्पष्ट है।

मैथ्यू आर्नल्ड के अनुसार- "Poetry is at bottom, a criticism of life." अर्थात् कविता अपने मूल रूप में जीवन की आलोचना है। इस लक्षण में उत्तम काव्य की विशेषता स्पष्ट हुई है। इसके बावजूद भी यह कोई विशिष्ट लक्षण नहीं माना जा सकता। क्योंकि जीवन की समीक्षा केवल कविता से ही संभव नहीं है।

डॉ. जॉनसन ने कविता को उस कला के रूप में स्वीकार किया है जो कल्पना की सहायता से युक्ति के द्वारा सत्य को आनंद से समन्वित करती है - "Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason." इस परिभाषा के स्वरूपों से यह लक्षण निकलता है कि सत्य प्रकाशन में आनंद का समावेश, रमणीयता और रोचक गुणों से परिपूर्ण काव्य ही उत्तम काव्य है। यहाँ कलात्मक पक्षों पर अधिक जोर दिया गया है।

2.5 हिंदी काव्य-लक्षण

हिंदी में उल्लेखित लक्षणों पर विचार इस प्रकार हैं-

आचार्य चिंतामणि ने अपने ग्रन्थ 'कविकल्पतरु' में साहित्यदर्पण के आधार पर काव्य के लक्षण देते हुए कहा है- 'बतकहाउ रसमै जू है कबित कहावै सोय।' अर्थात् रस से युक्त वाक्य काव्य कहलाते हैं। 'काव्यप्रकाश' में उन्होंने काव्य के लक्षणों पर इस प्रकार अपना मत व्यक्त किया है-

'सगुणावलंकरण सहित, दोषरहित जो होइ।
सबद अर्थ वारौ कवित, बिबुध कहत सब कोइ।।'

सुरती मिश्र ने 'काव्य-सिद्धांत' में काव्य का जो लक्षण दिया है, वह निम्न प्रकार है-

'बरनन मनरंजन जहाँ, रीति अलौकिक होइ।
निपुण कर्म कवि कौ जू तिहिं, काव्य कहत सब कोइ।।'

इससे कविता के यह लक्षण निर्धारित होते हैं कि अलौकिक रीति से मनोरंजनकारी वर्णन काव्य है। अत: यह परिभाषा संदेहपूर्ण है।

उल्लेखित हिंदी कवियों के अलावा कुछ आधुनिक ऐसे भी कवि निकले हैं, जिनकी धारणाएँ पाश्चात्य विशेषकर अंग्रेजी लक्षणों पर आश्रित तथा बहुत कुछ मौलिक भी है। उनकी परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने दो-तीन जगहों पर कविता के संबंध में विचार व्यक्त

किया है-

1. कविता प्रभावशाली रचना है जो पाठक या श्रोता के मन पर आनंददायी प्रभाव डालती है।
2. मनोभाव शब्दों का रूप धारण करते हैं। वही कविता है चाहे पद्यात्मक हो या चाहे गद्यात्मक।
3. अन्त:करण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है।

उल्लेखित प्रसंगों से कविता का लक्षण यह निर्धारण किया जा सकता है कि कविता प्रभावशाली शब्द रचना है, जो कवि मनोभावों को व्यक्त करते हैं अथवा जो हृदय से उद्धेलित होता हुआ चित्रवृत्ति का प्रकाश है। मगर इन धारणाओं को भी स्पष्ट माना नहीं जा सकता। महादेवी वर्मा के अनुसार- 'कविता कवि-विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उससे वैसी ही भावनाएँ किसी दुसरे के हृदय में आविर्भूत होती हैं।' लेकिन इस लक्षण के गीतिकाव्य की विशेषताएँ समाहित होने के कारण यह काव्य के पुरे क्षेत्र में लागु नहीं हो सकता।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. हिंदी विद्वानों की काव्य संबंधी विचारों पर प्रकाश डालिए।

सुमित्रानंदन पन्त ने 'कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है' कहकर इसके लक्षण को स्पष्ट किया है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति का कोई-न-कोई परिपूर्ण क्षण होगा, उसके मुहँ से निकली हुई वाणी को अगर कविता कहा जाय तो संसार में प्रत्येक व्यक्ति ही कवि होगा। अत: कविता के सन्दर्भ में दिया गया यह लक्षण भी परिपूर्ण नहीं माना जा सकता।



2.6 सारांश

भारतीय संस्कृत आचार्यों की दृष्टि सदेव इस बात पर रही कि कवित्व शक्ति एक दुर्लभ व श्रेष्ट प्रतिभा है। इसका दुरुपयोग करने के लिए न तो कोई मजबूर हो और न तो खुद से करना चाहिए। काव्य रचना स्वयं एक उत्तम पुरुषार्थ है। लेकिन इसके कुछ लक्षण होते हैं जिसे विद्वान अपने-अपने मतानुसार प्रयोग करते हैं। लेकिन लोकहित और लोकरंजन के लिए समर्पित ये काव्य उन विद्वानों के द्वारा दिए गए लक्षणों से बहुत परे हैं। काव्यशास्त्र में मिलनेवाले उन सभी कवि तथा विद्वान चाहे भारतीय हो, चाहे पाश्चात्य हो मूलत काव्य को स्वतंत्र मन की चिन्तन कहा है, जहाँ कवि कल्पना तथा यथार्थ को एक साथ समेटे हुए उसे शब्दों से गूंथने का काम करते हैं। बहुत कुछ कमियों के बावजूद भी विद्वानों द्वारा दिया गया कव्य लक्षण साहित्य में बहुत ही महत्वपूर्ण है।



2.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : चिंतामणि के अनुसार- 'बतकहाउ रसमै जू है कबित कहावै सोय।' अर्थात् रस से युक्त वाक्य काव्य कहलाते हैं।

समझने के लिए पढ़ें **'हिंदी काव्य-लक्षण'**।



2.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. काव्यालोचन- ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री', आर्य बुक डिपो, दिल्ली।
3. काव्य दर्पण- रामदहीन मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. भारतीय काव्यशास्त्र (भाग 1 और भाग 2)- बलदेव उपाध्याय, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।



2.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए-

1. 'काव्य सिद्धांत' किसकी रचना है?
2. सुमित्रानंदन पंत के अनुसार कविता क्या है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए-

1. काव्य के लक्षण से आप क्या समझते हैं?
2. भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य के क्या क्या लक्षण निर्धारित किए गए हैं?
3. विद्वानों द्वारा दिए गए मतों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि काव्य को लक्षणों में बांधना असंभव है- सतर्क उत्तर दीजिए।

*** ***** ***

इकाई 3 : काव्य हेतु

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 काव्य हेतु

3.4 सारांश

3.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

3.6 अधिक जानने के लिए पढ़ें

3.7 अभ्यास प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- काव्य हेतु का अर्थ एवं स्वरूप को जान सकेंगे।
- काव्य हेतु के सन्दर्भ में विद्वानों द्वारा दिए गए मतों से परिचय प्राप्त करेंगे।
- काव्य के आदर्श लक्षणों की क्या विशेषताएँ हैं? उसके के बारे में जानेंगे।
- साहित्य में उन हेतुओं का क्या काम है? उससे भी परिचय प्राप्त करेंगे।

3.2 प्रस्तावना

'हेतु' का अर्थ कारण है। 'काव्य हेतु' से अभिप्राय है –किसी कवि की वह शक्ति, जिससे वह काव्य रचना करने में समर्थ होता हो। इसके अंतर्गत काव्य सृजन की विविध प्रक्रियाओं का विवेचन किया जाता है। संसार में हमारे समक्ष अथवा हमारे साथ घटित घटनाओं का हमारे मन पर जो प्रभाव डालता है, उसे हम प्राय: अभिव्यक्त करना चाहते हैं। इसकी यथावत साधारण शब्दावली में अभिव्यक्ति को 'वार्ता' और कल्पनाश्रित एवं असाधारण शब्दावली में किए गए अभिव्यक्ति को 'काव्य' कहा जाता है। यह प्रतिभा ही काव्य हेतु है। महत्वपूर्ण है कि काव्य रचना कर सकने की समर्थ हर व्यक्तियों में नहीं होती। जो व्यक्ति अपने अनुभूतियों की सुन्दर, विलक्षण, व्यंजनात्मक रूप में अभिव्यक्त कर लेते हैं वे ही कवि हैं, क्योंकि उनकी अभिव्यक्ति साधारण से भिन्न होती है।

3.3 काव्य हेतु

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य हेतुओं पर पर्याप्त विचार किया गया। जिसमें मुख्यत: तीन हेतु के अलावा कुछ और अतिरिक्त अन्य हेतुओं के बारे में उल्लेख मिलता है। लेकिन मूल रूप से

स्वीकार किए गए - प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास ही प्रमुख तीन 'काव्य हेतु' है।

काव्यहेतु पर सर्वप्रथम '**अग्निपुराण**' में विचार किया गया और प्रतिभा, वेदज्ञान तथा लोकव्यवहार को काव्य हेतु के रूप में स्वीकार किया गया :

'नरत्वं दुर्लभं लोक विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र, शक्ति स्तत्र सुदुर्लभा।।'

अर्थात् लोक में नरत्व दुर्लभ है और उसमें विद्यावान नर होना दुर्लभ है। कवित्व परम दुर्लभ है और कविता करने की शक्ति (प्रतिभा) तो और भी दुर्लभ है।

संस्कृत काव्यशास्त्र में आचार्यों द्वारा 'काव्य हेतु' पर दिया गया मत कालक्रमानुसार प्रस्तुत हैं-

आचार्य भामह का मत-

'गुरुपदेशादध्येतु शास्त्रं जदधियोह्यप्यलम।
काव्यं तू जायते जातुं कस्यचित पर्तिभवात: ।।'

अर्थात् गुरु के उपदेश से जड़ बुद्धि वाले भी शास्त्र अध्ययन करने के लिए सुलभ हो जाता है। लेकिन काव्य किसी प्रतिभावान की प्रतिभा से ही उत्पन्न होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि बिना प्रतिभा के कोई व्यक्ति काव्य रचना में समर्थ नहीं हो सकता है। स्पष्ट: भामह ने प्रतिभा को प्रमुख काव्य हेतु मानते हुए प्रतिभा के साथ-साथ व्युत्पत्ति (शास्त्र ज्ञान) एवं अभ्यास को काव्य हेतुओं में स्थान दिया है।

आचार्य दंडी का मत -

'नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहुनिर्मलम।
आनंदश्चाभियोगोह्यस्या: करणं काव्यसम्पद: ।।'

दंडी ने अपने ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में प्रतिभा, आनंद अभियोग (अभ्यास) और लोकव्यवहार एवं शास्त्र ज्ञान को काव्य हेतुओं के रूप में मान्यता दी है।

दंडी के अनुसार काव्य सम्पदा के कारणों में नैसर्गिक प्रतिभा, बहुत सारे शास्त्रों को सुनने से प्राप्त निर्मल बुद्धि और निरंतर तीव्र अभ्यास आते हैं। काव्य रचना के लिए केवल प्रतिभा से कार्य नहीं होता बल्कि उसके साथ-साथ अन्य महत्वपूर्ण रचनाओं व शास्त्रों के सुनने-पढ़ने से उत्पन्न निर्मल बुद्धि की भी जरूरत होती है। काव्य सृजन के विविध प्रकारों और पद्धतियों की जानकारी के बिना उचित रूप में अभ्यास करने में कवि की प्रतिभा सफल नहीं हो सकती। प्रतिभा के साथ निर्मल बुद्धि की आवश्यकता पर बल देने का कारण यह है कि यदि कवि की बुद्धि शुद्ध नहीं है तो वह अपनी प्रतिभा का दुरपयोग भी कर सकता है या उसके भटकाव की संभावना हो सकती है। प्रतिभा का सही ढंग से उपयोग निर्मल बुद्धि ही कर सकती है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- काव्य हेतु पर सबसे पहले विवेचन 'अग्निपुराण' में किया गया है।
- प्रमुख काव्य हेतु तीन हैं- प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास।

आचार्य वामन का मत-

वामन ने भी अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार सुत्रवृति' में काव्यहेतु के लिए 'काव्यांग' शब्द का प्रयोग किया है। उनके अनुसार लोक, विद्या तथा प्रकीर्ण- ये तीन काव्य निर्माण की क्षमता प्राप्त करने का अंग हैं।

'लोको विद्या प्रकीर्णंच काव्याङ्गानि'

प्रतिभा को जन्मजात गुण मानते हुए उन्होंने इसे प्रमुख काव्य हेतु स्वीकार किया है-

'कवित्व बीजं प्रतिभानं'

प्रतिभा के साथ-साथ उन्होंने लोकव्यवहार, शास्त्रज्ञान, शब्दकोश आदि की जानकारी को भी काव्य हेतुओं में स्थान दिया। महत्वपूर्ण है कि वामन ने लोकविद्या के पश्चात ही प्रतिभा को महत्व दिया है।

रुद्रट ने भी काव्य के तीन हेतु स्वीकार किए हैं- 'शक्ति (प्रतिभा), व्युत्पत्ति एवं अभ्यास'। इन्होंने प्रतिभा के दो भेद स्वीकार किए हैं- सहजा प्रतिभा और उत्पाद्या प्रतिभा। सहजा कवियों में जन्मजात होती है एवं वही काव्य का मूल तत्व है। उत्पाद्या लोक-व्यवहार, शास्त्र अध्ययन एवं अभ्यास से उत्पन्न होती है।

काव्य हेतु पर विचार करते हुए आचार्य मम्मट ने अपने से पहले और बाद के सभी आचार्यों द्वारा प्रतिपादित मतों में सबसे अधिक सुव्यवस्थित, व्यापक और स्पष्ट विचार प्रकट किया है। 'काव्यप्रकाश' में **मम्मट** लिखते हैं-

'शक्तिनिपुणता लोक काव्याशास्त्राद्यावे क्षणात।
काव्यज्ञ शिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।'

उन्होंने यह माना कि शक्ति (प्रतिभा) के अभाव में काव्य का प्रसार संभव नहीं है।

'शक्ति: कवित्वबीज रूप: संस्कार विशेष।'

काव्य के उद्भव एवं निर्माण में शक्ति (प्रतिभा), निपुणता, लोक-काव्य शास्त्र आदि का अवलोकन, काव्य के जानकारों (कवि और काव्य के सिद्धांत की जानकारी रखने वाले लोगों) द्वारा प्राप्त शिक्षा के अनुसार अभ्यास प्रमुख हेतु है। मम्मट का दृष्टिकोण सबसे अधिक व्यापक और व्यावहारिक है। उनकी मौलिकता इस बात में है कि उन्होंने काव्य और शास्त्र के साथ-साथ लोक के अवलोकन (Observation) को अधिक महत्व दिया और स्वतंत्र रूप से अभ्यास करने में समय और श्रम के अपव्यय को ध्यान में रखते हुए कवियों और आचार्यों के

मार्गदर्शन में अभ्यास का निर्देश दिया। शक्ति और निपुणता के साथ-साथ प्रामाणिक मार्गदर्शन भी जरूरी है।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. प्रमुख काव्य हेतुओं पर अपना विचार प्रकट कीजिए।

केशव मिश्र का मत-

'प्रतिभा कारणं तस्य व्युत्पत्ति विभूषणं'

अर्थात् प्रतिभा काव्य का कारण है तथा व्युत्पत्ति से उसे विभूषित करते हैं।

आचार्य राजशेखर ने भी काव्यहेतु पर चर्चा करते हुए स्वीकारा है कि-

'प्रतिभा व्युत्पत्ति मिश्र: समवेते श्रेयस्यौ इति'

अर्थात् प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों का समवेत रूप काव्य हेतु के लिए आवश्यक है। राजशेखर प्रतिभा के दो भेद स्वीकारते हैं- कारयित्री प्रतिभा एवं भावयित्री प्रतिभा। कारयित्री प्रतिभा जन्मजात होती है तथा इसका संबंध कवि या रचनाकार से माने जाते हैं। भावयित्री प्रतिभा का संबंध सहृदय पाठक या आलोचक से है। कारयित्री प्रतिभा के भी तीन प्रकार हैं- सहजा, आहार्या तथा औपदेशिकी प्रतिभा।

आचार्य पंडितराज जगन्नाथ का मत है-

'तस्य च कारणं कविगता केवलं प्रतिभा'

जगन्नाथ ने केवल प्रतिभा को ही काव्यहेतु स्वीकार करते हुए इसके दो भेद स्वीकार किए हैं। प्रतिभा के वे दो भेद मानते हैं- कारयित्री और भावयित्री। उन्होंने इन दोनों में से कारयित्री को अधिक महत्वपूर्ण माना है। केवल प्रतिभा को ही काव्यहेतु मानने के कारण उन्हें 'केवल प्रतिभावादी' भी कहा जाता है।

रुद्रट तथा कुंतक ने भामह की प्रतिभा के स्थान पर शक्ति नाम दिया है, शेष यथावत है- शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास। वामन ने इसे ही प्रकारांतर तथा विस्तारपुर्वक स्वीकार किया है। वामन का मत है- 'प्रतिभा जन्म से प्राप्त संस्कार है, जिसके बिना काव्य रचना संभव नहीं है। उनके हेतु हैं- लोक, विद्या तथा प्रकीर्ण।

आचार्य **आनंदवर्धन** ने भी काव्य हेतुओं पर चर्चा करते हुए काव्य का प्रमुख हेतु प्रतिभा को स्वीकार किया है। आनंदवर्धन के अनुसार प्रतिभा रहित व्यक्ति काव्य रचना नहीं कर सकता। प्रतिभा और व्युत्पत्ति में से वे प्रतिभा को ही श्रेष्ठ माना है -

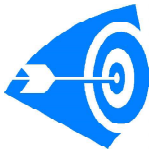
'न काव्यार्थ विरामोह्यस्ति यदि स्यात प्रतिभा गुण:।
सत्स्वपि पुरातन कविप्रबंधेषु यदि स्यात प्रतिभागुन।।'

उनके अनुसार प्रतिभाशाली व्यक्ति में वर्ण-विषयों का अभाव नहीं होता, वह प्राचीन वर्णित विषयों में भी नए भाव भर देता है।



3.4 सारांश

उल्लेखित जिन आचार्यों ने काव्यहेतु संबंधी मत व्यक्त किए हैं, उनमें दो प्रकार के विचार दिखाई पड़ते हैं। एक मत के अनुसार प्रतिभा, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास का सम्मिलित रूप ही काव्य के कारण है। इस विचार वर्ग में रूद्रट तथा मम्मट का स्थान प्रमुख है। दुसरे मत के अनुसार काव्य का कारण केवल प्रतिभा है और व्युत्पत्ति एवं अभ्यास उसके संस्कारक या सहायक तत्व हैं। इस वर्ग के अंतर्गत राजशेखर तथा जगन्नाथ जैसे आचार्य प्रमुख है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि काव्य के मूल प्रेरक तत्व ही मूलत: काव्यहेतु है। यह एक ईश्वर प्रदत्व शक्ति है। जिसके कारण ही कवि काव्य रचना करने में समर्थ बन जाते हैं।



3.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

1.1.
1.2.
1.3.
1.4.
1.5.
1.6.
1.7.
1.8.
1.9.
1.10.

प्रश्न 1 का उत्तर : भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य हेतुओं पर पर्याप्त विचार किया गया। जिसमें मुख्यत: तीन हेतु के अलावा कुछ और अतिरिक्त अन्य हेतुओं के बारे में उल्लेख मिलता है। लेकिन मूल रूप से स्वीकार किए गए - प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास ही प्रमुख तीन 'काव्य हेतु' है।

अच्छी तरह से जानने के लिए देखें '**काव्य हेतु**'।



3.6 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. काव्यालोचन- ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री', आर्य बुक डिपो, दिल्ली।
3. काव्यदर्पण- रामदहीन मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. भारतीय काव्यशास्त्र (भाग 1 और भाग 2)- बलदेव उपाध्याय, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।

5. रस सिद्धांत- डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, दिल्ली।
6. अलंकार धारणा:विकास और विश्लेषण- शोभाकांत मिश्र, बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना।



3.6 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए-

1. 'हेतु' का अर्थ क्या है?
2. दंडी के अनुसार काव्य हेतु क्या-क्या है?
3. आचार्य राजशेखर के अनुसार प्रतिभा कितने प्रकार के हैं? प्रत्येक का नाम उल्लेख कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए-

1. काव्यशास्त्र में 'काव्य-हेतु' की भूमिका पर एक टिप्पणी लिखिए।
2. काव्य-हेतु से आप क्या समझते हैं? प्रमुख काव्य हेतुओं पर चर्चा कीजिए।
3. भारतीय विद्वानों द्वारा दिया गया काव्य-हेतु संबंधी मतों पर एक लेख प्रस्तुत कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 4 : काव्य प्रयोजन

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 काव्य प्रयोजन

4.4 सारांश

4.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

4.6 अधिक जानने के लिए पढ़ें

4.7 अभ्यास प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप -

- काव्य के प्रयोजनों को जान सकेंगे।
- काव्य प्रयोजन पर विद्वानों द्वारा दिए गए मत तथा उसके तर्क से परिचय प्राप्त करेंगे।

4.2 प्रस्तावना

काव्य प्रयोजन से अभिप्राय है- काव्य रचना के उपरांत उससे प्राप्त फल, जो कि दो प्रकार के व्यक्तियों को मिलता है कवि को और सहृदय को- महाकाव्य के पाठक तथा नाटक के प्रेक्षक को। असल में काव्य प्रयोजन का तात्पर्य है काव्य का उद्देश्य अथवा रचना की आतंरिक प्रेरणा शक्ति। संस्कृत काव्यशास्त्र में किसी विषय के अध्ययन के लिए चार क्रमों का निर्धारण किया गया है- अधिकारी, संबंध, विषयवस्तु और प्रयोजन। इस समुच्चय को 'अनुबंधचतुष्टय' कहते हैं। काव्य प्रयोजन का अर्थ है- काव्य रचना से प्राप्त फल। जैसे- धन, मन, संपत्ति आदि।

4.3 काव्य प्रयोजन

भारतीय आचार्यों ने काव्य या साहित्य को सोद्देश्य माना है, अत: भरतमुनि से विश्वनाथ तक काव्य के प्रयोजन पर विचार करने की लम्बी परम्परा रही है। नीचे हम इन मतों का ऐतिहासिक क्रम से विवेचन करेंगे-

भरत मुनि-

इन्होंने सर्वप्रथम 'नाटयशास्त्र' के माध्यम से काव्य प्रयोजनों का उल्लेख किया है। इनके अनुसार नाटक, धर्म, यश एवं आयु का साधक, कल्यानकरण, बुद्धिवर्धक एवं लोकोप्रदेशक होता है। केवल इतना ही नहीं यह लोक मनोरंजक एवं शोकपीड़ितों को शांति प्रदान करनेवाला

भी है।

'उत्तमाधममध्यानां नराणांकर्मसंश्रयम।
हितोप्रदेशजननं धृतिक्रीडा सुखादिकृत।।
दु:खार्त्तानं श्रमार्त्तानं शोकार्तानां तपस्विनाम।
विश्रामजननं लोके नात्यमेतद भविष्यति।।
धर्म्यं यशस्यमायुश्यं हितं बुद्धिविवर्धनम।
लोकोपदेशजननं नात्यमेतद भविष्यति।।'

अर्थात् उत्तम, माध्यम और अधम मनुष्यों के कर्म को अच्छे ढंग से आश्रय देने (निरुपित करने) के लिए, हितकारी उपदेश देने के लिए और सुख प्रदान करने के लिए रचना (काव्य) होगी। दु:ख, श्रम, शोक से आर्त्त और तपस्वियों को विश्राम (मनोरंजन) देने के लिए यह नाटक (काव्य) होगा। धर्म, यश, हित व बुद्धि को बढ़ाने वाले तथा लोगों को (उचित) उपदेश देने के लिए यह नाटक होगा यानि कि इसकी रचना होगी। यहाँ भरत मुनि ने नाटक के बहाने काव्य के आश्रय लोगों से जोड़ कर रचना कर्म के उद्देश का निरूपण किया है। नाटक की रचना से केवल नाटककार को ही श्रेय नहीं मिलेगा बल्कि उसके आश्रय सामाजिक लोगों को भी उसका फल मिलेगा। यह नाटक लोगों को धर्म, आयु, आयुष्य, हित और बुद्धि को बढ़ाने वाला तो होगा ही, इसके साथ-साथ लोगों को उत्तम, माध्यम और अधम लोगों की पहचान करने में सहायक तथा हितकर उपदेश देनेवाला भी होगा। ये लोगों को शारीरिक और मानसिक पीड़ा से मुक्त करेगा। काव्य की उपयोगिता को यहाँ लोक कल्याण की भावना से जोड़कर देखा गया।

भामह-

भामह ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में कहा है-

'धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षन्यं कलासु च।
करोति कीर्ति प्रीतिं च साधुकाव्य-निबन्धनम।।'



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. भरतमुनि के अनुसार काव्य प्रयोजन क्या है? सतर्क उत्तर दीजिए।

आचार्य भामह के अनुसार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और कलाओं में विचक्षणता (अद्भुत निपुणता) पाने के साथ-साथ कीर्ति और लोगों का प्यार (लोकप्रियता) पाने के लिए साधू अर्थात् श्रेष्ठ काव्य की रचना होती है। यहाँ पर भामह ने चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति को काव्य रचना का कारण बताकर कवि के लिए अन्य सांसारिक जिम्मेदारियों के निर्वाह को उसी में समाहित कर दिया है। कवि जब तक अन्य कर्तव्य और चिंतन में फंसा रहेगा तब तक वह व्यक्तिगत राग द्वेष के अधीन होकर श्रेष्ठ काव्य की रचना नहीं कर सकता क्योंकि रचनाकार को द्रष्टा रूप में ही

काव्योचित सत्य की उपलब्धि हो सकती है। भामह का मानना है कि श्रेष्ठ काव्य की रचना से सारे अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति हो सकती है।

वामन-

वामन के अनुसार काव्य के मुख्यत: दो प्रयोजन हैं- दृष्ट एवं अदृष्ट। दृष्ट प्रयोजन का संबंध प्रीति से है तो अदृष्ट का संबंध कीर्ति से। प्रीति द्वारा लौकिक फल और कीर्ति द्वारा अलौकिक फल की प्राप्ति होती है।

'काव्यं सत दृष्टादृष्टार्थ प्रीतिकीर्तिहेतुत्वात।
काव्यं सत् चारू, दृष्टप्रयोजनं प्रीतिहेतुत्वात्।
अदृष्ट प्रयोजनं कीर्तिहेतुत्वात्।'

यहाँ पर दृष्ट व अदृष्ट तथा दोनों के साथ चारू का विशेषण रूप में प्रयोग व्याख्या की अपेक्षा रखता है। दृष्ट अर्थात् जो दिखाई दे, जिसे वामन ने प्रीति के साथ जोड़ कर रखा है। प्रीति का मतलब है की सहज प्रेम या स्वाभाविक प्रवृत्ति। मनुष्य की मूल प्रवृति के रूप में काम भावना का परिष्कार श्रेष्ठ काव्य के पढ़ने सुनने से होता है। उसके भीतर अवांछित भोग लालसा का भी विशेष अभिप्राय है। काव्य रचना की शक्ति की दुर्लभता की बात काव्य हेतु के अंतर्गत पूर्व आचार्यों ने की थी। इस शक्ति के दुरुपयोग के प्रति भी वे सजग थे। वामन ने यहाँ उसी ओर संकेत किया है।

रुद्रट-

भामह के काव्य-प्रयोजन का विस्तार करते हुए 'रूद्रट' ने काव्य प्रयोजन चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की फल प्राप्ति के अतिरिक्त अनर्थ का शमन, विपत्ति का निवारण, रोग्विमुक्ति तथा अभीष्ट वर की प्राप्ति है।

'ननु काव्येन क्रियते सरसनामवगमश्चवर्गे।
लघुमृदुनी रसेभ्यस्टे हि त्रयस्संति शास्त्रेभ्य:।।
अर्थमनर्थोपशमं शमसममथवा मतं यदेवास्य।
विराचितरूचिरसुरस्तुतिरखिलं लभते तदेव कवि:।।
नृत्वा यथा हि दुर्गा केचित्तीर्ना दुस्तरां विपदम।
अपरे रोगविमुक्तिं वरमन्ये लेभिरेह्याभिमत्म।।'

रूद्रट का काव्य प्रयोजन कवि की जरूरतों से अधिक जुड़ा हुआ है। काव्य द्वारा चतुर्वर्ग अर्थात् चारों पुरुषार्थों में सारस आवागमन या उनकी प्राप्ति होती है। पाठकों और कवि दोनों के लिए अनर्थ का नाश, शांति की उपलब्धि, विपत्ति से छुटकारा, रोग का नाश और अभिलषित वर की प्राप्ति या इच्छा पूर्ति में सहायक काव्य की रचना कवि की समस्त भौतिक बाधाओं को दूर करने का माध्यम है। लोक और राजसभा, दोनों जगह कवि के अभीष्ट की सिद्धि में काव्य रचना समर्थ है। रूद्रट का काव्य प्रयोजन इस मायने में विशिष्ट है कि वह अनर्थ, विपत्ति के विविध रूपों के निवारण में समर्थ काव्य के अलौकिक महत्व की प्रतिष्ठा करता है।

कुंतक-

कुंतक ने मुख्यत: काव्य के तीन प्रयोजनों का उल्लेख किया है-

1. चतुर्वर्ग की प्राप्ति की शिक्षा
2. व्यवहार आदि के सुन्दर रूप की प्राप्ति
3. लोकोत्तर आनंद की उपलब्धि।

कुंतक लिखते हैं-

'धर्मादिसाधनोप्राय: सुकुमारक्रमोदित:।
कव्याबंधोह्यभिजातानां हृदयाह्लाद्कारक:।।।
व्यवहार परिस्स्पंद सौन्दर्य व्यवहारिभि:।
सत्कावयाधिगमादेव नुतनौचित्यमाप्यते।।
चतुर्वर्गफलस्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम।
कयामृतरसेनांतश्चमत्कारो वितन्यते।।'

काव्य धर्मादि का साधन और उपाय है। साधन कवियों के लिए और उपाय पाठकों के लिए। काव्य को पढ़ना भी धर्म माना जाता है। स्वाध्याय को संस्कृत साहित्य में यज्ञ और तपस्या का दर्जा दिया गया है। यह अपनी सुकुमारता या सरसता से लोगों को तुरंत यह बोध कराता है कि कैसे धर्म व अन्य पुरूषार्थों का सम्पादन किया जा सकता है। अभिजात अर्थात् सुरुचि संपन्न और परिष्कृत विचारों वाले लोगों के हृदय को आह्लाद यानि कि प्रेम जनित आनंद प्रदान करता है। व्यवहार में सौंदर्य की वृद्धि करता है।

मम्मट-

काव्य प्रयोजनों के सन्दर्भ में अपने पूर्ववर्ती मतों का समाहार करते हुए मम्मट कहते हैं-

'काव्यं यशसेह्यर्थकृते व्यवाहरविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य: परिनिर्वत्तये कान्तसममिततयोपदेशयुजे।।'

काव्य रचना का कारण व्यवहारिकता के धरातल पर अधिक व्यापक रूप में पेश करते हुए मम्मट मानते हैं कि काव्य से यश, धन, व्यवहार ज्ञान, अमंगल का नाश, तुरंत आनंद की प्राप्ति और कांता (प्रेमी, प्रेयसी) की तरह उपदेश मिलता है। काव्य से अमंगल का नाश होता है।

विश्वनाथ-

मम्मट के पश्चात काव्य के प्रयोजन पर विचार में नवीनता का अभाव मिलता है। बाद के आचार्यों ने केवल मम्मट के ही विचारों को व्याख्यायित किया है। विश्वनाथ ने काव्य के प्रयोजन के तहत चतुर्वर्ग की प्राप्ति को महत्व दिया है। इनके अनुसार शास्त्र का भी यही प्रयोजन है किन्तु शास्त्र का अनुशीलन कष्टसाध्य है और सबको सुलभ नहीं है। काव्य के अध्ययन से जनसामान्य को भी चतुर्वर्ग की प्राप्ति संभव है।

'चतुर्वर्गफलप्राप्ति : सुखादाल्पधियामपि।'

कहना न होगा कि विश्वनाथ की चतुर्वर्ग की प्राप्ति के उद्देश्य से काव्य सृजन की बात मम्मट के कांता सम्मित उपदेश का ही विस्तार है।



4.4 सारांश

उपयुक्त आचार्यों के मत का अध्ययन करते हुए हम कह सकते हैं काव्य की रचना किंचित उद्देश्य को ध्यान में रखकर की जाती है। काव्य के द्वारा कवि जीवन का परिष्कार करता है। भारतीय साहित्य का प्रधान लक्ष्य रस का उद्रेक होते हुए भी प्रकारांतर से जीवनमूल्यों का उत्थान एवं सामाजिक कल्याण है। भारतीय परम्परा में काव्य या साहित्य 'सत्यम शिवम् सुन्दरम्' का सच्चा वाहक है। सत्य (यथार्थ) और शिव (कल्याणकारी) हुए बिना किसी भी कृति का सुन्दर होना असंभव है।



4.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : भरतमुनि ने 'नाटयशास्त्र' के माध्यम से काव्य प्रयोजनों का उल्लेख किया है। अधिक जानकारी के लिए पढ़ें **'भरतमुनि।'**



4.6 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. काव्यालोचन- ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री', आर्य बुक डिपो, दिल्ली।
3. काव्यदर्पण- रामदहीन मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. भारतीय काव्यशास्त्र (भाग 1 और भाग 2)- बलदेव उपाध्याय, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।
5. रस सिद्धांत- डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, दिल्ली।
6. अलंकार धारणा; विकास और विश्लेषण- शोभाकांत मिश्र, बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना।



4.7 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए-

1. भरतमुनि के अनुसार काव्य प्रयोजन क्या है ?
2. काव्य प्रयोजन से आप क्या समझते हैं ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए-

1. काव्य प्रयोजन के सन्दर्भ में भारतीय विद्वानों द्वारा दिया गया मतों पर एक लेख प्रस्तुत कीजिए।
2. काव्य प्रयोजन से आप क्या समझते हैं ? काव्य प्रयोजन संबंधी भारतीय धारणाओं पर विचार प्रस्तुत कीजिए।
3. भारतीय काव्यशास्त्र में 'काव्य प्रयोजन' की क्या भुमिका है ?

*** ***** ***

इकाई 5 : रस की अवधारणा एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 रस का स्वरूप

5.4 रस के अवयव

5.5 सारांश

5.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

5.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

5.8 अभ्यास प्रश्न

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप-

- रस के अवयवों और रस के स्वरूप पर विभिन्न विद्वानों के विचारों से अवगत होंगे।
- काव्य में रस की महत्व से परिचय प्राप्त करेंगे।
- रस की विशेषताओं पर तार्किक दृष्टि से विचार कर सकेंगे।
- आधुनिक आलोचकों की दृष्टि में रस की प्रासंगिकता को जान सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

रस की प्रक्रिया क्या है? वह कैसे निष्पन्न होती है? इस संदर्भ में भरतमुनि ने स्पष्ट ही बता दिया था कि- विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से स्थायी भाव ही सहृदय के हृदय में रसानुभूति कराता है।

'तत्र रसानेव तावदावभिव्याख्यास्याम:।
न हि रसादृते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते।
तत्र विभावानुभांवव्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्ति:।'

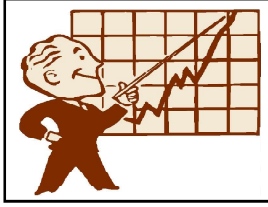
रस का अर्थ है 'आस्वाद'। 'रस्यते आस्वाद्यते इति रस:। जिस प्रकार स्वादिष्ट भोजन करने से जिह्वा को खट्टे, मीठे, कड़वे रस की अनुभूति होती है, वैसे ही सुंदर काव्य पढ़ने, सुनने या नाटक देखने से सहृदय को अलग-अलग रस की अनुभूति होती है। काव्य से पाप्त आनंद को समझने के लिए रस सामग्री के चार पक्षों- स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव पर विचार करना आवश्यक है।

5.3 रस का स्वरूप

भारतीय काव्यशास्त्र में रस विवेचन का आधार आचार्य भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' है। इसमें आचार्य भरतमुनि ने रस के विभिन्न अवयवों का विवेचन करते हुए 'रससूत्र' दिया। उनका रससूत्र इस प्रकार है–

'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्तिः।'

अर्थात् विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव (संचारी भाव) के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। आचार्य भरतमुनि ने इस सूत्र के द्वारा रस का जो उदाहरण दिया है, उससे रस के स्वरूप पर उनके मत का पता चलता है। उनके अनुसार, 'जिस प्रकार अनेक व्यंजनों और औषधियों के संयोग से रस की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार अनेक भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। जैसे गुड़ादि द्रव्यों तथा औषधियों से रस उत्पन्न होते हैं, वैसे ही अनेक भावों से अवगत होने से स्थायीभाव रसत्व को प्राप्त होता है। आचार्य भारतमुनि ने रस को आस्वाद न मानकर आस्वाद्य माना है। जिस प्रकार विभिन्न प्रकार के व्यंजन अपना अस्तित्व छोड़कर भोज्य रूप में परिणत होते हैं, उसी प्रकार रस के विविध अवयव समन्वित रूप में रसत्व को प्राप्त करते हैं। ये विविध अवयव रस नहीं हैं अपितु वे संयुक्तावस्था में रस स्वरूप को प्राप्त होता हैं। आचार्य भारतमुनि का यह भी मानना है कि जिस प्रकार स्वस्थ चित्र वाला व्यक्ति ही भोज्य पदार्थों का आस्वाद ले सकता है, उसी प्रकार सहृदय सामाजिक की रस का आस्वादन कर सकता है। सहृदय रस का आस्वादन कर आनंद प्राप्त करता है इस प्रकार आस्वादन प्रथम स्थिति अर्थात् कारण है, जबकि आनंद द्वितीय स्थिति अर्थात् कार्य है। रस के स्वरूप पर भी विभिन्न आचार्यों ने विशेषतः अभिनवगुप्त ने प्रकाश डाला और उन्हीं की मान्यताओं एवं धारणाओं को परवर्ती संग्रहकर्ता आचार्यों में– मम्मट, विश्वनाथ आदि ने अपने रूप में ढाल लिया।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. रस किसे कहते हैं? सतर्क उत्तर दीजिए।

आचार्य अभिनव गुप्त का रस विवेचन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आचार्य अभिनव गुप्त ने रस का स्वरूप विवेचन करते हुए उसमें अलौकिकता का समावेश किया है। आचार्य अभिनव गुप्त ने बताया है कि 'रति' आदि स्थायी भाव पाठकों के अन्तःकरण में वासना या संस्कार रूप में सदैव विद्यमान रहते हैं, जो विभाव आदि के संयोग से व्यंजनावृत्ति के अलौकिक व्यापार द्वारा 'रस' रूप में व्यक्त होते हैं। उनके अनुसार, लोक व्यवहार में रति आदि भावों के कारण और कार्य नाटय अथवा काव्य में विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं। काव्य निबद्ध होने पर इनका लौकिक रूप नष्ट हो जाता है और ये अलौकिक रूप धारण कर लेते हैं। सामाजिक इन विभाव, अनुभाव एवं संचारी (व्यभिचारी) भावों का समवेत रूप में प्रत्यक्षीकरण करता है।

यह प्रत्यक्षीकरण ही रस है। यह आस्वाद रूप होता है, आस्वाद्य नहीं। स्थायीभाव आस्वाद का विषय होने से रस न होकर उसकी प्राप्ति का साधन है। यह रस प्रत्यक्ष, अनुभव आदि से भिन्न अलौकिक होता है। रस चर्वणा काल में सामाजिक का चित्र देश, काल, पूर्णत: आत्म विश्रान्ति रूप होता है। आचार्य अभिनव गुप्त रसानुभूति का आधार व्यंजना शक्ति को मानते हैं। उनका मानना है कि काव्य हमारी भावोत्तेजना का साधन मात्र है तथा वह नए भावों की सृष्टि नहीं करता है। इस अर्थ परिवर्तन का सर्वाधिक दायित्व अभिनवगुप्त पर है, उनके मत का सारांश इस प्रकार हैं–

1. लोक में रस्यादि स्थायी भावों के जो 'कारण' 'द्योतक' और 'पोषक' होते हैं, वे काव्य नाटकादि में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी नाम से अभिहित किए जाते हैं।
2. सहृदय द्वारा इन अलौकिक विभावादि के समवेत रूप का मनसा साक्षात्कार ही रस है।
3. यह रस आस्वाद ही होता है, आस्वाद का विषय नहीं।
4. रस अनिवार्यत: आत्मविश्रान्तिमयी आनन्द चेतना है।

परवर्ती आचार्यों ने प्राय: रस की इन्हीं विशेषताओं का प्रकार भेद से व्याख्या किया है।

आचार्य मम्मट के अनुसार 'लोक में रत्यादि रूप स्थायी भावों के जो कारण कार्य और सहकारी होते हैं, वे यदि काव्य या नाटक में प्रयुक्त होते हैं तो क्रमश: विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव कहलाते हैं तथा उन विभावादि से व्यक्त वह रत्यादि स्थायी भाव ही रस कहलाता है। आचार्य मम्मट का रस के सन्दर्भ में दिया गया मत आचार्य अभिनव गुप्त के विचारों का ही पल्लवन है।

आचार्य विश्वनाथ का रस विवेचन के सम्बन्ध में मत है, 'सहृदयों के हृदय में स्थित रत्यादि स्थायीभाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों द्वारा अभिव्यक्त होकर रस स्वरूप को प्राप्त होते हैं। उनके मतानुसार रस का स्वरूप इस प्रकार है–

'सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मय:।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्योब्रह्मास्वाद सहोदर:।
लोकोत्तरचमत्कारप्राण: कैश्चित्प्रमात भि:।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रस:।'



महत्वपूर्ण बिंदु

- रस विवेचन का आधार ग्रन्थ भरतमुनि द्वारा रचित 'नाट्यशास्त्र' है।

अन्त:करण में रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्वगुण के सुन्दर, स्वच्छ प्रकाशित होने से रस का साक्षात्कार होता है। रस का स्वरूप संस्कारवान, सहृदयजन, अखण्ड, अद्वितीय, स्वप्रकाश, आनन्दमय, चिन्मय, वेद्यान्तरस्पर्शशून्य, ब्रह्मास्वादसहोदर, लोकोत्तर–चमत्कारमय

है। रस चर्वणा के समय अन्य विषय का स्पर्श तक नहीं होता। अत: यह ब्रह्मानन्द के समान होता है। उपर्युक्त आचार्यों के मतों के विवेचन के आधार पर रस के स्वरूप की निम्नलिखित विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती है-

1. रस की निष्पत्ति सामाजिक के हृदय में तभी होती है, जब उसके हृदय में रजोगुण और तमोगुण का तिरोभाव हो जाता है और सत्वगुण का उद्रेक होता है।
2. रस अखण्ड होता है। रसानुभूती के समय विभावादि अपना स्वातंत्र अस्तित्व त्याग कर स्थायी भाव में लय हो जाते हैं और सहृदय को उनकी अलग-अलग अनुभूति न होकर समन्वित अनुभूति होती है।
3. रसास्वाद काल में सामाजिक पूर्णत: तन्मय रहता है। रसानुभूति की स्थिति में उसे अन्य वेद्य विषयों का ज्ञान ही नहीं रहता है। वह राग-द्वेष एवं देश-काल की सीमाओं से मुक्त होकर पूर्णत: आत्मलीन हो जाता है।
4. रस ब्रह्मानन्द सहोदर है। रसास्वादन काल में अन्य विषय सहृदय सामाजिक को स्पर्श नहीं कर पाते। इसलिए उसका आनन्द ब्रह्मानन्द (समाधि) के समान है। ब्रह्मानन्द लौकिक विषयों से असम्पृक्त तथा स्थायी होता है, जबकि रसास्वाद लौकिक विषयों से न तो पूर्णत: असम्पृक्त होता है और न स्थायी। इसलिए उसे ब्रह्मानन्द न मानकर ब्रह्मानन्द सहोदर माना जाता है।
5. रस न सविकल्पक ज्ञान है और न परोक्ष निर्विकल्पक ज्ञान। वह अलौकिक है।
6. रस न प्रत्यक्ष होता है और न परोक्ष होता है। रस का साक्षात्कार होता है। इसलिए उसे परोक्ष नहीं कहा जा सकता है। उसे प्रत्यक्ष भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि काव्य में शब्दादि से वह उत्पन्न होता है।
7. रस सुख-दुखात्मक न होकर आनन्दमय है। भाव सुखात्मक-दुखात्मक होता हैं, किन्तु जब वे रस रूप में परिणत हो जाते हैं, तब आनन्द स्वरूप हो जाते हैं।

5.4 रस के अवयव

रस के चार अवयव स्वीकार किये गये हैं। स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव। भरतमुनि ने आठ रस स्वीकार किये-

रस	**स्थायी भाव**
श्रृंगार	रति
हास्य	हास
करुण	शोक
रौद्र	क्रोध
वीर	उत्साह
भयानक	भय

वीभत्स	घृणा
अद्भुत	आश्चर्य

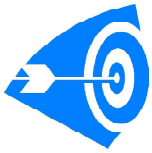
नवें रस के रूप में आचार्य उद्भट ने 'शांत' रस की स्थापना की जिसका स्थायी भाव 'निर्वेद' है। वर्तमान में नौ रस मान्य है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि रस काव्य की आत्मा है तथा यह काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। रस के अभाव में काव्य की कल्पना असम्भव है।



5.5 सारांश

सारांश के रूप में कहा जा सकता है कि शुद्ध-बुद्ध आत्मा आनन्दमय है। लेकिन भौतिक जीवन के कारण उस पर एक आवरण पड़ा रहता है, जब सफल काव्य द्वारा वह आवरण हटा दिया जाता है तो प्रेक्षक की आत्मा उसमें विद्यमान अपनी उस आनन्दमयी चेतना को प्राप्त करती है और उस समय उसे जिस आनन्द की अनुभूति होती है, वही काव्यानन्द है।



5.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव (संचारी भाव) के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। आचार्य भरतमुनि ने इस सूत्र के द्वारा रस का जो उदाहरण दिया है, उससे रस के स्वरूप पर उनके मत का पता चलता है।

समझने के लिए पढ़ें '**रस का स्वरूप**'।



5.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. काव्यालोचन- ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री', आर्य बुक डिपो, दिल्ली।
3. काव्यदर्पण- रामदहीन मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. भारतीय काव्यशास्त्र (भाग 1 और भाग 2)- बलदेव उपाध्याय, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।
5. रस सिद्धांत- डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, दिल्ली।



5.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए-

1. रस का अर्थ क्या है ?
2. भरतमुनि की रस संबंधी विचारों को स्पष्ट कीजिए।
3. आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार रस क्या है ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए-

1. रस के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
2. रस के अवयवों का विवेचन कीजिए।
3. रस से आप क्या समझते हैं ? उसके विविध प्रकार पर प्रकाश डालिए।
4. रस के अवधारणा पर प्रकाश डालिए।

*** ***** ***

इकाई 6 : रस निष्पत्ति एवं विविध आचार्यों के मत

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 रस निष्पत्ति

6.4 सारांश

6.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

6.6 अधिक जानने के लिए पढ़ें

6.7 अभ्यास प्रश्न

6.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप -

- रस निष्पत्ति क्या है जान सकेंगे।
- रस निष्पत्ति पर विभिन्न विद्वानों के विचारों से अवगत होंगे।
- रस के विभिन्न अंगों से परिचय प्राप्त करेंगे।

6.2 प्रस्तावना

यद्यपि संपूर्ण रस सिद्धांत की आधारशिला भरत प्रदत्त रस सूत्र है-

'विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्ति है'

क्योंकि इसी सूत्र पर रस सिद्धांत का भव्य भवन टिका हुआ है। भरतमुनि का यह रस सूत्र एक साथ रस की परिभाषा और रस सिद्धांत के स्वरूप का बोधक भी है। कारण स्पष्ट है- आचार्य भरतमुनि ने इसी सूत्र के आधार पर रस के स्वरूप को आनुषंगिक रूप में प्रस्तुत किया था। जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है, जिस प्रकार गुड़ादि द्रव्यों, व्यंजनों और औषधियों से 'षाडवादि' रस बनते हैं, उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर स्थायी भाव भी इस रूप को प्राप्त होता है।

रस का अर्थ है 'आस्वाद'। 'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः। जिस प्रकार स्वादिष्ट भोजन करने से जिह्वा को खट्टे, मीठे, कड़वे रस की अनुभूति होती है, उसी प्रकार प्रसन्न प्रेक्षक भावों एवं अभिनयों द्वारा व्यंजित स्थायी भावों का आस्वादन करते हैं और हर्षादि को प्राप्त करते हैं। वैसे ही सुंदर काव्य पढ़ने, सुनने या नाटक देखने के माध्यम से सहृदय को अलग-अलग रस की अनुभूति होती है। काव्य से पाप्त आनंद को समझने के लिए रस सामग्री के चार पक्षों- स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव पर विचार करना आवश्यक है। रस विषयक विभिन्न

मतों का सामान्य परिचय दिया जा रहा है।

6.3 रस निष्पत्ति

भारतीय काव्यशास्त्र में रस सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण स्थान है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि माने जाते हैं, जिन्होंने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में इसका पर्याप्त विवेचन किया है। भरतमुनि द्वारा दिया गया रस सूत्र ही इस सम्प्रदाय का मूल आधार माना जाता है। यह रस सूत्र निम्नवत् है :

'विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्ति:।'

अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पति होती है।

रस सूत्र की व्याख्या करने से पूर्व हमें इसके विभिन्न अवयवों पर भी संक्षेप में विचार कर लेना चाहिए।

1. विभाव - भाव के उद्बोधक कारणों को विभाव कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं-
   1. आलम्बन विभाव, और
   2. उद्दीपन विभाव।
2. अनुभाव - भाव का बोध कराने वाले कारणों को अनुभाव कहते हैं। ये चार प्रकार के होते हैं-
   1. कायिक
   2. वाचिक
   3. सात्विक, और
   4. आहार्य।
3. व्यभिचारी भाव - इन्हें संचारी भाव भी कहते हैं, क्योंकि ये सभी रसों में संचरण करते हैं। स्थायी भाव के पोषक कारणों को व्याभिचारी भाव कहा जाता है। इनकी संख्या 33 हैं।

रस की व्याख्याएँ अनेक आचार्यों ने प्रस्तुत की, जिनमें चार आचार्यों प्रसिद्ध है - भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक एवं अभिनवगुप्त।

रस सूत्र की व्याख्या जिन चार आचार्यों ने की उन्हें रस सूत्र के व्याख्याता आचार्य कहा जाता है। इन आचार्यों के नाम और इनके द्वारा प्रतिपादित मत का नाम इस प्रकार है :

1. भट्टलोल्लट का उत्पतिवाद या आरोपवाद।
2. आचार्य शंकुक का अनुमितिवाद।
3. भट्टनायक का भुक्तिवाद।
4. आचार्य अभिनव गुप्त का अभिव्यक्तिवाद।



महत्वपूर्ण बिंदु

- रस का अर्थ है- आस्वाद
- भरतमुनि के अनुसार- विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों

के संयोग से रस की निष्पति होती है।

1. **भट्टलोल्लट :** इस सूत्र के प्रथम व्याख्याता आचार्य भट्टलोल्लट है। इनके मत को उत्पत्तिवाद, उपचयवाद, प्रतीतिवाद या आरोपवाद कहा जाता है। आरोपवाद इसलिए क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार सहृदय नट पर अनुकार्य का आरोप करता है। उत्पत्तिवाद इसलिए क्योंकि इस सिद्धांत के अनुसार स्थायीभाव को विभाव से उत्पन्न माना गया है। इनका कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, किन्तु अभिनवगुप्त और मम्मट ने अपने ग्रन्थों में जो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, उनसे भट्टलोल्लट के मत का पता चलता है।

इनके अनुसार :

1. रस की 'उत्पत्ति' होती है। उत्पत्ति के लिए कारण, कार्य उपकरण से उत्पत्ति सम्भव होती है।
2. विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से स्थायी भाव परिपक्व होकर रस कहलाता है।
3. रस मूलत : अनुकार्य (राम आदि मूल पात्रों) में रहता है पर दर्शक, अभिनेताओं पर राम आदि का आरोप कर लेता है, अत: नायक में गौण रूप से रस रहता है।

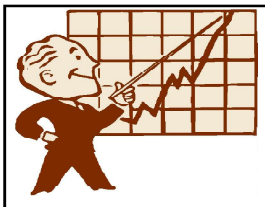
मम्मट ने भट्टलोल्लट के मत की व्याख्या करते हुए कहा है कि-

1. विभाव और स्थायी भाव के बीच जनक-जन्य संबंध होता है।
2. अनुभावों एवं स्थायी भाव के बीच गमक-गम्य संबंध होता है।
3. संचारी भाव एवं स्थायी भाव के बीच पोषक-पोष्य संबंध होता है।

भट्टलोल्लट ने संयोग का अर्थ उत्पाद्य उत्पादक संबंध बताया तथा निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति बताया। ये मीमांसा दर्शन पर आधारित है।

आचार्य शंकुक ने भट्टलोल्लट के मत की आलोचना करते हुए कहा हैं कि यदि उपचित स्थायी भाव रस कहलाता है, तो यह उपचित कितनी मात्रा तक होनी चाहिए, यह निश्चित करना असम्भव है।

इस सिद्धांत को 'आरोपवाद' कहना उचित नहीं है, क्योंकि आरोप में उपमेय और उपमान दोनों का ज्ञान बराबर बना रहता है। अत: इसे भ्रान्तिवाद कह सकते हैं, क्योंकि हम नट को नट न समझकर भ्रान्तिवश राम आदि ही समझ रहे होते हैं।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. भरतमुनि की रस निष्पत्ति संबंधी विचारों पर प्रकाश डालिए।

2. **आचार्य शंकुक :** रससूत्र के दूसरे व्याख्याता आचार्य शंकुक ने रस सूत्र की व्याख्या 'अनुमान प्रमाण' के आधार पर की। इनका मत अनुकृतिवाद या अनुमितिवाद कहलाया।

शंकुक ने संयोग का अर्थ अनुमाप्य-अनुमापक संबंध तथा निष्पत्ति का अर्थ अनुमिति माना। इनका मत न्यायदर्शन पर आधारित है।

शंकुक के अनुसार-

सहृदय नट पर राम आदि पात्रों का आरोप नहीं करता अपितु अनुमान कर लेता है। इसलिए उनका मत अनुमितिवाद कहा जाता है।

न्यायशास्त्र के अनुसार प्रतीति चार प्रकार की होती हैं-

1. राम को राम समझना-सम्यक् प्रतीति।
2. राम है अथवा राम नहीं है- संशयात्मक प्रतीति।
3. राम को कुछ अन्य समझना- मिथ्या प्रतीति।
4. राम जैसा है- सादृश्य प्रतीति।

चित्र तुरंग न्याय इन चारों प्रतीतियों से भिन्न होता है। चित्र में बने घोड़े को देखकर यह कहना कि यह घोड़ा है, चित्र तुरंग ज्ञान कहलाता है। इसी के आधार पर दर्शक अभिनेता पर राम की प्रतीति कर लेता है।

इनके अनुसार रस निष्पत्ति की समूची प्रक्रिया अनुकरण पर आधारित है। नट-नटी वास्तविक राम-सीता के विभाव, अनुभाव का अनुसरण करते हैं। अर्थात् नट-नटी काव्यनिबद्ध 'राम' का अनुकरण करते हैं, मूल पात्र का नहीं।

अनुभावों का अनुकरण शिक्षा, अभिनय कुशलता के बल पर होता है।

इस सिद्धांत का भट्टनायक ने विरोध किया। उनके अनुसार अनुमान द्वारा राम-सीता आदि हमारे विभाव नहीं बन सकते। उनके प्रति हमारा संस्कार युक्त श्रद्धा-भाव हमारी रसत्व प्राप्ति में बाधक होगा।

3. **भट्टनायक :** रस सूत्र के तीसरे व्याख्याता आचार्य भट्टनायक का सिद्धांत 'भुक्तिवाद' कहलाता है। उन्होंने रस को ब्रह्मनंद सहोदर माना है। उनके अनुसार रस की न तो उत्पत्ति होती है और न अनुमिति होती है अपितु रस की 'भुक्ति' होती है। इन्होंने रस के लिए 'साधारणीकरण' का सिद्धांत दिया। इनके मतानुसार संयोग से भोज्य-भोजक संबंध तथा निष्पत्ति का अर्थ 'भुक्ति' है। इनका सिद्धांत सांख्य दर्शन पर आधारित है। भट्टनायक के अनुसार शब्द रूप काव्य के तीन व्यापार होते हैं-

1.अभिधा व्यापार

2.भावकत्व व्यापार

3.भोजकत्व व्यापार।

अभिधा से काव्य का शब्दार्थ समझा जाता है तथा भावकत्व से साधारणीकरण होता है, जबकि भोजकत्व व्यापार से हम साधारणीकृत स्थायी भाव का रस रूप में भोग करते हैं। भट्टनायक के मतानुसार-

क) सांख्यदर्शन में प्रकृति को त्रिगुणात्मिका मानकर उसे सत, रज एवं तम से युक्त

माना जाता है। सत् में प्रीति, रज में अप्रीति तथा तम में विषाद की स्थिति होती है।

ख) भावकत्व व्यापार से काव्य में वर्णित विभावादि किसी व्यक्ति विशेष के विभाव न रहकर सर्वसाधारण के विभावादि बन जाते हैं। इसी प्रक्रिया को साधारणीकरण कहा गया है।

ग) भावकत्व के उपरान्त भोजकत्व व्यापार प्रारम्भ होता है, जिसमें सहृदय अपने ही साधारणीकृत स्थायी भाव का रस रूप में भोग करता है।

घ) अभी तक रस का स्थान रंगमंच था किन्तु भट्टनायक ने उसका स्थान सहृदय सामाजिक का हृदय बताया है।

ङ) काव्यादि का आनन्द लेते समय रजोगुण एवं तमोगुन की निवृत्ति हो जाती है और सत्व गुण का उद्रेक होने पर लोकोत्तर आनन्द की अनुभूति होती है।

अभिनवगुप्त ने भट्टनायक सम्मत अभिधा और साधारणीकरण व्यापार को स्वीकार करते हुए भी भोजकत्व व्यापार को स्वीकार नहीं किया। इसके स्थान पर उन्होंने व्यंजना व्यापार स्वीकार किया है।

4. **अभिनवगुप्त :** रस सूत्र के चौथे व्याख्याता आचार्य अभिनवगुप्त है। इनका मत 'अभिव्यक्तिवाद' कहलाता है। इनका रस सिद्धांत विवेचन शैव मत पर आधारित है। इन्होंने संयोग का अर्थ अभिव्यंजना या व्यंग्य-व्यंजक का तथा निष्पत्ति का अर्थ अभिव्यक्ति माना है। अभिनवगुप्त के अनुसार-

क) लौकिक कारण, कार्य और सहकारी कारण काव्य नाटक में निरूपित को जाने के पश्चात् क्रमश:विभाव, अनुभाव और संचारी भाव कहलाते हैं।

ख) सहृदय के हृदय में वासना रूप में स्थित भाव का जब विभावादि से संयोग होता है, तो वह स्थायीभाव ही रस का रूप धारण कर लेता है।

ग) विभावादि सामान्य व्यवहार में लौकिक होते हैं, किन्तु काव्य और नाटक आदि में वे अलौकिक हो जाते हैं।

घ) रस की सत्ता आत्मगत होती है। रस सहृदय सामजिक के हृदय में व्याप्त होता है।

शैव मत के अनुसार जिस प्रकार यह जगत शिव की इच्छा शक्ति की अभिव्यक्ति है, उसी प्रकार प्रेक्षक के मन में वासना रूप से अवस्थित स्थायी भाव की निर्विघ्न अभिव्यक्ति रस है।

प्राचीन आचार्यों ने रस निष्पत्ति सम्बन्धी जो मत दिए हैं, उन्हीं के आलोक में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ. नगेन्द्र जैसे विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए। आचार्य शुक्ल दो प्रकार की रसानुभूति मानते हैं- उत्तम कोटि की रसानुभूति और मद्यम कोटि की रसानुभूति। जहाँ सहृदय का तादात्म्य आश्रय के साथ होता है वहाँ उत्तम कोटि की रसानुभूति होती है, किन्तु जब सहृदय आश्रय का शीलद्रष्टा होता है, तब उसका तादात्म्य कवि की अनुभूति के साथ होता है, यह मध्यम कोटि की रसानुभूति है।

डॉ. नगेन्द्र ने रस निष्पत्ति की व्याख्या 'रस सिद्धांत' नामक ग्रन्थ में की है और इसे व्यापक मनोवैज्ञानिक सिद्धांतो से जोड़ दिया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि रस सूत्र की व्याख्या से जो चिन्तन मनन हुआ उसने काव्यशास्त्र का बहुत उपकार किया है।



6.4 सारांश

सामान्यत: रस शब्द का प्रयोग पदार्थों का रस, अम्ल, तिक्त आदि आयुर्वेद का रस, साहित्य का रस और भक्ति या मोक्ष आदि के लिए होता है। जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। रस विविध भावों से संयुक्त होकर स्थायी भाव को प्राप्त करता है। भारतीय काव्यशास्त्र में भट्टनायक का रस विवेचन कई दृष्टियों में महत्वपूर्ण है। जहाँ अनुचित रीति से रस का प्रयोग होता है तो असंगत होने के कारण वह रसाभास होता है। अनौचित्य के कारण रस विरस होकर रह जाता है।



6.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : भारतीय काव्यशास्त्र में रस सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण स्थान है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि माने जाते हैं, जिन्होंने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में इसका पर्याप्त विवेचन किया है।

समझने के लिए देखें '**रस-निष्पत्ति**'।



6.6 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. काव्यालोचन- ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री', आर्य बुक डिपो, दिल्ली।
3. काव्यदर्पण- रामदहीन मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. भारतीय काव्यशास्त्र (भाग 1 और भाग 2)- बलदेव उपाध्याय, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।
5. रस सिद्धांत- डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, दिल्ली।
6. अलंकार धारणा; विकास और विश्लेषण- शोभाकांत मिश्र, बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना।



6.7 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए-

1. रस निष्पत्ति से आप क्या समझते हैं ?
2. अनुभाव कितने प्रकार के होते हैं ?
3. अनुमितिवाद के प्रवर्तक आचार्य कौन है ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए-

1. रस निष्पत्ति से आप क्या समझते हैं ?
2. रस निष्पत्ति के संदर्भ में विभिन्न आचार्यों के मतों पर प्रकाश डालिए।
3. रस के अंगों की विवेचना कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 7 : साधारणीकरण

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 साधारणीकरण से तात्पर्य

7.4 साधारणीकरण के संबंध में विद्वानों का मत

7.4.1 संस्कृत आचार्यों के मत

7.4.2 हिंदी आचार्यों के मत

7.4.3 पाश्चात्य समीक्षकों के मत

7.5 सारांश

7.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

7.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

7.8 अभ्यास प्रश्न

7.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- साधारणीकरण का अर्थ जान सकेंगे।
- साधारणीकरण की अवधारणा से परिचय प्राप्त करेंगे।
- साधारणीकरण पर विभिन्न आचार्यों के मतों से अवगत होंगे।

7.2 प्रस्तावना

भरतमुनि के रसनिष्पत्ति-विषयक प्रख्यात सूत्र के प्रथम दो व्याख्याताओं- भट्ट लोल्लट और श्री शंकुक की व्याख्याओं पर जो आक्षेप किए गए, उनमें से स्पष्टत: अथवा प्रकारांतर से किया गया एक आक्षेप यह भी था कि सहृदय दूसरों के (मूल नायक-नायिका आदि, काव्यनिर्मित पात्रों अथवा नत-नटी आदि के) भावों से रसास्वाद किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं, विशेषत: उस स्थिति में जबकि उनमें से किसी एक अथवा कुछ एक अथवा सबके प्रति वे किसी प्रकार का पूर्वाग्रह- श्रद्धा, भक्ति, प्रीति, घृणा आदि में से कोई भाव रखते हों ? इस समस्या के समाधान के लिए भट्ट नायक ने 'साधारणीकरण-सिद्धांत' का प्रतिपादन समुपस्थित किया है। उनके द्वारा दिए मत से यह कहा जा सकता है कि साधारणीकरण द्वारा कवि निर्मित पात्र व्यक्ति-विशेष न रहकर सामान्य प्राणीमात्र बन जाते हैं, अर्थात् वे किसी देश एवं काल की सीमा में बद्ध न रहकर सार्वदेशिक एवं सर्वकालिक बन जाते हैं और उनके इस स्थिति में उपस्थित हो जाने पर सहृदय भी अपने पूर्वाग्रहों से विमुक्त हो जाता है।

7.3 साधारणीकरण से तात्पर्य

'साधारणीकरण' रस सिद्धांत का मूल आधार है। काव्य में वर्णित विशिष्ट रामादि पात्रों के 'भाव' सर्वसाधारण या कम-से-कम सहृदय साधारण के आस्वाद के विषय किस प्रकार हो जाते हैं? यह काव्यशास्त्र का अत्यन्त मौलिक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। मानव की आत्माभिव्यक्ति एवं आत्मास्वाद का सुन्दर माध्यम रहा है। किन्तु चिन्तनशील मनुष्य ने जब काव्यास्वाद के विषय में विचार किया तो पहला प्रश्न उदय हुआ कि राम और दुष्यन्त आदि से हमारा क्या सम्बन्ध है? देश-काल का विराट व्यवधान होते हुए भी उनके भाव हमारे आस्वाद के हेतु कैसे बनते हैं? इन प्रश्नों का प्रामाणिक समाधान है।

साधारणीकरण का अर्थ है - सामान्यीकरण अर्थात् जो साधारण नहीं है, उसे साधारण कर देना। 'असाधारणस्य साधारणीकरण इति साधारणीकम्।' जिस वस्तु का साधारणीकरण होता है, वह वस्तु अपनी विशेषताओं को त्यागकर सामान्यरूप में प्रतिष्ठित हो जाती है- भाव की दृष्टि में उसके समस्त वैयक्तिक धर्म ओझल हो जाते हैं।

7.4 साधारणीकरण के संबंध में विद्वानों का मत

साधारणीकरण सिद्धांत के उद्भावक या जन्मदाता आचार्य भट्टनायक को माने जाते हैं। वैसे साधारणीकरण के बीज तो भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' आदि में भी मिल जाते हैं।

7.4.1 संस्कृत आचार्यों के मत

भट्टनायक : साधारणीकरण के प्रवर्तक रस सूत्र के व्याख्याता भट्टनायक को माना जाता है। भट्टनायक ने साधारणीकरण की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है-

'भावकत्वं साधारणीकरणम्।

तेन हि व्यापारेण विभावादय: स्थायी च साधारणी क्रियन्ते।

साधारणीकरणं चैतेदव यत्सीतादि विशेषणा कामिनीत्वादि सामान्येनोपस्थित:।

स्था 'अनुभावादिनां च सम्बन्धिविशेषानंवाछित्वेन।'

अर्थात् भावकत्व का अर्थ है साधारणीकरण। इस व्यापार के द्वारा विभावादि का और स्थायी भावों का सधारणीकरण होता है। साधारणीकरण से अभिप्राय है सीतादि विशेष पात्रों का कामिनी आदि सामान्यों रूपों में उपस्थित होना। स्थायी भाव और अनुभाव के साधारणीकरण का आशय है विशिष्ट सम्बन्धों से मुक्ति।

इस व्याख्या के अनुसार विभाव अर्थात् आश्रय, आलम्बन और उद्दीपन, अनुभाव, स्थायी तथा संचारी आदि सभी का साधारणीकरण होता है।

अर्थात् भावकत्व साधारणीकरण है। इस व्यापार से विभावादि और स्थायी भावों का साधारणीकरण होता है। उदाहरण के लिए रंगमंच पर यशोदा-कृष्ण के प्रसंग

में यशोदा कृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव का अनुभव करती है। इस नाटक को देखने वाले दर्शक भी कृष्ण की चेष्टाओं को देखकर वात्सल्य का अनुभव करते हैं। साथ ही कृष्ण केवल यशोदा का पुत्र न रहकर सभी को अपना पुत्र प्रतीत होता है अर्थात् सबके वात्सल्य भाव का आलम्बन बन जाता है। इसी प्रक्रिया को साधारणीकरण कहते हैं।



महत्वपूर्ण बिंदु

- साधारणीकरण का अर्थ है – सामान्यीकरण अर्थात् जो साधारण नहीं है, उसे साधारण कर देना।

स्थायी भाव तथा अनुभाव आदि के साधारणीकरण का अर्थ है- उनका सम्बन्ध विशेष से स्वतन्त्र होना और सामान्य रूप में प्रतीत होना। दूसरे शब्दों में विभावादि का अपने और पराये के बन्धन से मुक्त होना ही साधारणीकरण है।

वस्तुत: पहले पाठक या दर्शक राम और सीतादि को विशेष रूप में ही ग्रहण करता है किन्तु बाद में जो कुछ पढ़ता, सुनता या नाटक में देखता है, उसे उससे प्रभावित होकर बार-बार उसी का ध्यान करता है। उस समय देशकाल का बन्धन भी छिन्न-भिन्न हो जाता है। यह आत्मविभोर करनेवाली दशा भावकत्व व्यापार से उत्पन्न होती है। भट्टनायक ने साधारणीकरण सिद्धांत का विश्लेषण इस प्रकार की है-

क) अभिधा द्वारा काव्यार्थ का बोध।

ख) अर्थबोध के उपरान्त भावकत्व व्यापार की निष्क्रियता'।

ग) भावकत्व व्यापार के द्वारा विभावादि के विशेष सम्बन्धों का परिहार। यही साधारणीकरण है।

घ) स्थायी भाव भोजकत्व व्यापार द्वारा रसरूप में परिणत हो जाता हैं।

ङ) रसानुभूति प्रदान करनेवाली दशा ही साधारणीकरण है।

अभिनवगुप्त : अभिनवगुप्त ने साधारणीकरण की सर्वप्रथम व्याख्या प्रस्तुत की। उनके कथन का सार है कि साधारणीकरण द्वारा कवि रचित पात्र व्यक्ति विशेष न रहकर सामान्य प्राणी मात्र बन जाते हैं अर्थात् वे किसी देश एवं काल की सीमा में बद्ध न रहकर सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक बन जाते हैं और उनके इस स्थिति में उपस्थित हो जाने पर सहृदय भी अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त हो जाता है।

अभिनवगुप्त का कथन है कि 'अब आश्रय और आलम्बन दोनों ही देश-काल तथा ममत्व-रत्व के बन्धन से मुक्त हो जाएँगे, तब उसका वैशिष्ट्य भी निश्चय ही देश-काल और व्यक्ति संसर्ग से मुक्त होकर-सामान्य बन जाएगा।' अभिनवगुप्त के अनुसार साधारणीकरण के दो स्तर हैं-

क) विभावादि का व्यक्ति विशिष्ट संबंध छूट जाता है।

ख) सामाजिक का व्यक्तित्व बन्धन नष्ट हो जाता है।

अर्थात् विभावादि के साथ-साथ स्थायी भाव का भी साधारणीकरण होता है तथा साथ ही सामाजिक की अनुभूति का भी साधारणीकरण हो जाता है। अत: आचार्य अभिनवगुप्त विभावादि का ममत्व-परत्व से अलग होना ही साधारणीकरण मानते हैं।

आचार्य विश्वनाथ : दर्पणकार विश्वनाथ ने वैसे ही स्थायी भाव और विभावादि सभी का साधारणीकरण माना है किन्तु उन्होंने आश्रय के साथ प्रमाता के अभेद या तादात्म्य को औरों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है। आचार्य विश्वनाथ ने साधारणीकरण की परिभाषा इस प्रकार दी है-

'व्यापारो स्ति, विभावादेर्नाम्ना साधारणीकृति:।
तत्प्रभावेण, यस्यासन्पाथोधिप्लव नादय:।
प्रमाता तद भेदेन स्वात्मानं प्रतिपद्यते।'

अर्थात् साधारणीकरण विभावादि का विभावन नामक व्यापार है। इसी के प्रभाव से उस समय प्रमाता अपने को समुद्रलंघन करनेवाले हनुमान आदि से अभिन्न समझने लगता है। इस प्रकार साधारणीकरण क्रिया के फलस्वरूप प्रमाता साधारण आश्रय से ही नहीं, अपितु अलौकिक आश्रय से भी अभेद सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। अर्थात् विभावों के साधारणीकरण के साथ उसके परिणाम स्वरूप दर्शक या पाठक का आश्रय के साथ तादात्म्य होता है। उनके अनुसार विभावादि का अपने-पराये की भावना से मुक्त हो जाना साधारणीकरण है। विभावादि के संबंध में ये मेरे हैं अथावा मेरे नहीं है, दूसरे के हैं अथवा दूसरे के नहीं हैं- इस प्रकार का विशेषीकरण नहीं होता।

अत: काव्य, नाटक, गत-विभाव आदि तीनों का व्यापार अर्थात् सम्मिश्रित क्रिया-कलाप साधारणरूप ग्रहण कर लेता है। यह पूर्व विवेचित मतों के अनुसार विशिष्ट का सामान्यीकरण है, इसके परिणामस्वरूप हनुमान आदि पात्रों और सहृदय दोनों में अभेद स्थापित हो जाता है। इससे सहृदय दर्शक पात्रों को ही रीति आदि भावों को ग्रहण कर लेने के फलस्वरूप मानसिक रूप से उन्हीं के अनुरूप आचरण करने लगता है। यही सामान्य का विशिष्टीकरण है, यही स्थिति रसास्वाद की भूमिका है। इस प्रकार विश्वनाथ के अनुसार प्रमाता का आश्रय के साथ अभेद या तादात्मय की अवस्था की साधारणीकरण है।

पंडितराज जगन्नाथ: पंडितराज जगन्नाथ प्रत्यक्ष: साधारणीकरण को नहीं मानते। इसके स्थान पर वे 'दोष कल्पना' की बात करते हैं। उनका कहना है कि कुछ आचार्य विभावादि के साधारणीकरण की जो व्याख्या करते हैं, वह दोष की कल्पना के बिना सम्भव नहीं है क्योंकि काव्य में शकुन्तला आदि शब्दों द्वारा शकुन्तला का ही बोध होता है। उससे कान्तात्व या सामान्य नारी का बोध कैसे हो सकता है। वस्तुत: पंडितराज भी एक प्रकार से साधारणीकरण को स्वीकार करते हैं।

7.4.2 हिन्दी आचार्यों के मत

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: शुक्ल ने अपनी पुस्तक चिन्तामणि मे साधारणीकरण संबंधी अपने मत प्रस्तुत किए हैं। शुक्ल का कथन है- 'जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यत: सबके उस भाव का आलम्बन हो सके तब तक उसमें रस उद्‌बोधन की पूरी शक्ति नहीं आती। इसी रूप में लाया जाना हमारे यहाँ साधारणीकरण कहलाता है। जो इस प्रकार हैं-

क) साधारणीकरण का अभिप्राय यह है कि पाठक या श्रोता के मन में जो व्यक्तिविशेष या वस्तुविशेष आती है, वह जैसे काव्य में वर्णित 'आश्रय' के भाव का आलम्बन होता है, वैसे ही सब सहृदय पाठकों या श्रोताओं के भाव का आलम्बन हो जाती है।

ख) जिस व्यक्ति विशेष के प्रति किसी भाव की व्यंजना कवि या पात्र करता है, पाठक या श्रोता की कल्पना में वह व्यक्ति विशेष ही उपस्थित रहता है।

ग) साधारणीकरण आलम्बनत्व धर्म का होता है। व्यक्ति तो विशेष ही रहता है, पर उसमें प्रतिष्ठा ऐसे सामान्य धर्म की रहती है, जिसके साक्षात्कार से सब श्रोताओं या पाठकों के मन में एक ही भाव का उदय थोड़ा या बहुत होता है।

घ) आचार्य शुक्ल दो प्रकार की रसानुभूति मानते हैं- उत्तम कोटि की रसानुभूति और मध्यम कोटि की रसानुभूति। उत्तम कोटि की रसानुभूति में श्रोता या दर्शक काव्य में वर्णित आश्रय के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेता है और मध्यम कोटि की रसानुभूति वहां होती है, जहां श्रोता या दर्शक काव्य में वर्णित आश्रय का शीलद्रष्टा मात्र होता है।

शुक्ल जी के मत भी भट्टनायक की भाँति आलम्बनत्व के साधारणीकरण की बात को स्वीकार करते हैं। शुक्ल जी ने रसावस्था की एक निम्न अवस्था को भी स्वीकार किया है जो स्पष्टत: आचार्य विश्वनाथ के मत का प्रभाव है, जिसमें वे साधारणीकरण की दो स्थितियाँ मानकर चलते हैं।

अत : आचार्य शुक्ल आलम्बनत्व धर्म का साधारणीकरण मानते हैं।

आचार्य श्यामसुन्दर दास : इन्होंने आचार्य शुक्ल के साधारणीकरण संबंधी मत की आलोचना की है तथा इस संबंध में अपना मौलिक मत दिया है। उनके अनुसार-

क) ये सहृदय पाठक अथवा श्रोता के चित का साधारणीकरण मानते हैं।

ख) साधारणीकरण की व्याख्या करने में उन्होंने योग की 'मधुमति' भूमिका की परिकल्पना की है। मधुमती भूमिका में जब चित्त पहुंच जाता है, तब तक निर्वितर्क अवस्था में होता है।

ग) वितर्क की दशा में चित्त को वस्तु, वस्तु के संबंध और वस्तु के संबंधी इन तीनों की पृथक् -पृथक् प्रतीति होती है। उसी को शब्द, अर्थ, ज्ञान भी कहते हैं। योगी जब मधुमती भूमिका में प्रवेश करता है, तब उसका चित्त ज्ञान की निर्वितर्क अवस्था में रहता है, अर्थात् उसे केवल वस्तु की प्रतीति होती है, वस्तु के संबंध और संबंधी की नहीं।

घ) साधारणीकरण की स्थिति भी इस मधुमती भूमिका जैसी है। इसीलिए यहां पुत्र की प्रतीति केवल पुत्र के रूप में होती है। इस प्रकार प्रतीत होता हुआ पुत्र प्रत्येक सहृदय के वात्सल्य का आलम्बन होगा।

अत: आचार्य श्यामसुन्दर दास की दृष्टि विषय की अपेक्षा विषयी की ओर अधिक रही है। वे सहृदय के चित्त का साधारणीकरण मानते हैं।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : वाजपेयी का मत है कि सहृदय का कवि की भावना तक पहुँच जाना ही साधारणीकरण है। भावना द्वारा साधारणीकरण की विवेचना करते हुए लिखते हैं- 'साधारणीकरण का अर्थ रचयिता और उपभोक्ता के बीच भावना का तादात्म्य है। साधारणीकरण वास्तव में कवि-कल्पित व्यापार का होता है, केवल किसी पात्र विशेष का नहीं।'

डॉ. नगेन्द्र : डॉ. नगेन्द्र कवि की अनुभूति का साधारणीकरण मानते हैं। उनके अनुसार साधारणीकरण न तो आश्रय (राम) का होता है, न आलम्बन (सीता) का होता है, अपितु यह कवि की अनुभूति का होता है। उनके कथनानुसार 'कवि वही होता है जो अपनी अनुभूति का साधारणीकरण कर सकता है। अपनी अनुभूति को व्यक्त कर लेना अलग बात है, इसका साधारणीकरण कर लेना अलग बात। सभी व्यक्ति उसे यत्किंचित व्यक्त तो कर लेते हैं, परन्तु इसका साधारणीकरण करने की शक्ति कवि में होती है।' उनके मत का सार निम्नलिखित हैं-

क) साधारणीकरण कवि की अपनी अनुभूति का होता है, अर्थात् जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति को इस प्रकार अभिव्यक्त कर सकता है कि वह सभी के हृदय में समान अनुभूति जगा सके तो हम कह सकते हैं कि उसमें साधारणीकरण की शक्ति विद्यमान है।

ख) विषय का रूप तो अज्ञात ही रहता है किन्तु कविगण अपनी-अपनी भावना के अनुरूप उसका वर्णन करते हैं। कवि की इसी भावना का साधारणीकरण होता है। पाठक भी कवि की साधरणीकृत भावना का आस्वादन करता है।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. साधारणीकरण संबंधी पाश्चात्य विद्वानों की विचारों पर प्रकाश डालिए।

7.4.3 पाश्चात्य समीक्षकों के मत

मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार करनेवाले पाश्चात्य समीक्षकों ने विभावादि के साधारणीकरण की चर्चा न करके भाव तादात्म्य पर ध्यान दिया है और उस स्थिति को व्यक्त करने के लिए इम्पैथी शब्द का प्रयोग किया है। तदनुभूति की दशा में सहृदय और भोक्ता कवि और पाठक दोनों का व्यक्तित्व एक हो जाता है। भाव तादात्म्य या तदनुभूति पाठक या दर्शक की वह मानसिक दशा है, जिसमें वह थोड़ी देर के लिए अपनी वैयक्तिक आत्म-चेतना को भूलकर नाटक या सिनेमा के किसी पात्र के साथ अपना तादात्मय स्थापित कर लेता है। इस प्रकार के विचार रिचर्डस और क्रोचे ने भी व्यक्त किए हैं। इनके अनुसार किसी कवि की रचना का रसास्वादन करने के लिए हमको इसके धरातल तक पहुँचना चाहिए।

निष्कर्षत:

क) असाधारण का साधारण रूप ग्रहण कर लेना साधारणीकरण कहलाता है।

ख) यह विभावादि के सम्मिश्रित क्रिया-कलाप (समस्त घटना चक्र) का होना है।

ग) इसके द्वारा सहृदय पूर्वाग्रहों से मुक्त हो जाता है।

घ) साधारणीकरण रसास्वाद में भूमिका का कार्य करता है।

ङ) साधारणीकरण आलम्बनत्व धर्म का होता है।

च) साधारणीकरण सहृदय पाठक या श्रोता के चित्त का होता है।

छ) साधारणीकरण कवि की अनुभूति का होता है।

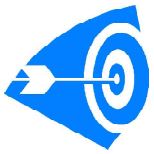
वस्तुत : ये सारे मत एक-दूसरे के विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं।



7.5 सारांश

साधारणीकरण के सिद्धांत का उद्भावन और व्यवस्थित विवेचन भट्टनायक ने किया है तथा उसे शास्त्रीय रूप देने का श्रेय आचार्य अभिनवगुप्त को है। आचार्य शुक्ल और डॉ. नगेन्द्र की मान्यता भी यही है कि साधारणीकरण का व्यापार आलम्बन से प्रारम्भ तथा प्रेरित होता है और अन्त उसी के द्वारा संचारित होता है किन्तु रचना में आश्रय, कवि तथा सामाजिक तीनों का सहयोग आवश्यक है। रसानुभूति के लिए एक प्रकार की भावमूलक तन्मयता अपेक्षित होती है।

इसी तन्मयता को काव्यशास्त्रीयों के भाषा में साधारणीकरण कहा गया है। अत: विभावादि, स्थायी भाव, कवि की अनुभूति आदि का साधारणीकरण तिरोभाव के अतिरिक्त कुछ नहीं है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि असाधारण का साधारण रूप में गृहित होना ही साधारणीकरण है, जो रसास्वाद में भूमिका का कार्य करता है।



7.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार करनेवाले पाश्चात्य समीक्षकों ने विभावादि के साधारणीकरण की चर्चा न करके भाव तादात्म्य पर ध्यान दिया है और उस स्थिति को व्यक्त करने के लिए इम्पैथी शब्द का प्रयोग किया है।

उत्तर प्राप्त करने के लिए देखें '**पाश्चात्य समीक्षकों के मत**'।



7.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. काव्यालोचन- ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री', आर्य बुक डिपो, दिल्ली।
3. काव्यदर्पण- रामदहीन मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद।

ज़ भारतीय काव्यशास्त्र (भाग 1 और भाग 2)- बलदेव उपाध्याय, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।

4. रस सिद्धांत- डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, दिल्ली।
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र- कुछ सिद्धांत कुछ वाद, अनिल राय, शिवालिक प्रकाशन।



7.8 अभ्यास प्रश्न

(क) निम्निलिखत प्रश्नों का उत्तर लीखिए-

1. साधारणीकरण से आप क्या समझते हैं?
2. साधारणीकरण के संबंध में विद्वानों द्वारा दिए गए मतों पर आलोचना कीजिए।
3. साधारणीकरण का अर्थ क्या है? काव्यशास्त्र में साधारणीकरण की भूमिका पर एक आलेख प्रस्तुत कीजिए?

*** ***** ***

इकाई 8 : अलंकार संप्रदाय-1

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 अवधारणा एवं स्वरूप

8.4 अलंकरावादी आचार्य और उनकी स्थापनाएँ

8.5 सारांश

8.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

8.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

8.8 अभ्यास प्रश्न

8.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- अलंकार के अर्थ से परिचय प्राप्त करेंगे।
- अलंकार के प्रकार को जान सकेंगे।
- अलंकार के स्वरूप और इसके प्रमुख आलोचकों के विचारों से अवगत होंगे।

8. 2 प्रस्तावना

अलंकार कविता के सौंदर्य को बढ़ाने वाले तत्व होते हैं। जिस प्रकार आभूषण से नारी का लावण्य बढ़ जाता है, उसी प्रकार अलंकार से कविता की शोभा बढ़ती है। अलंकारों का काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। किसी तथ्य, अनुभूति, घटना या चरित्र की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों का उपयोग होता है।

अलंकार दो शब्दों से मिलकर बनता है- अलम+कार= अलंकार। यहाँ अलम का अर्थ होता है- आभूषण, जबकि कार का अर्थ है- करने वाला। इसलिए कहा गया है- 'अलंकरोति इति अलंकार- अर्थात् जो अलंकृत करता है, वही अलंकार है। अत: यह कहा जा सकता है कि अलंकार साधारण कथन न होकर चमत्कारपूर्ण उक्ति है।'

8.3 अवधारणा एवं स्वरूप

अलंकारों का काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। किसी तथ्य, अनुभूति, घटना या चरित्र की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों का उपयोग होता है। अलंकार के स्वरूप एवं अवधारणा को स्पष्ट करने से पहले हमें अलंकार क्या है? इस बात को समझना अधिक आवश्यक है।

'अलंकार' शब्द अलम पूर्वक कृ धातु से निष्पन्न हुआ है। इसकी व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जाती है। प्रथम अलंकारोतीत अलंकार' अर्थात् जो आभूषित करता है, वह अलंकार है। द्वितीय, 'अलंक्रियते नेनेत्यलंकार' अर्थात् जिसके द्वारा कोई पदार्थ आभूषित हो, उसे अलंकार कहते हैं। ये अलंकार काव्य-सौंदर्य को पूर्णता या पर्याप्तता प्रदान करते हैं। दंडी काव्य के सभी शोभादायक धर्मों को अलंकार मानते हुए कहा है-

'काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।'

अर्थात् काव्य-सौंदर्य के कारणभूत धर्मों ही अलंकार है। इनसे भावों में रमणीयता एवं प्रेषनीयता तथा अभिव्यक्ति में स्पष्टता तथा सौंदर्य सम्पन्नता उत्पन्न होती है।

अलंकार मूलत: वाणी के विभूषण है। सामान्य बात अलंकारों से विभूषित होकर एक विशेष मनोहरता से संपन्न हो जाती है। जिस उक्ति में कोई बाँकपन मिलता है, वही उक्ति अलंकार है।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. अलंकार के स्वरूप पर विचार कीजिए।

8.4 अलंकरावादी आचार्य और उनकी स्थापनाएँ

अलंकारों का सर्वप्रथम निरूपण किसने किया था इस पर विवाद है। 'काव्यमीमांसा' में उल्लेखित राजशेखर की एक कथन के अनुसार शेष ने शब्दश्लेष, पुलस्त्य ने वास्तव (स्वभावोक्ति), औपकायन ने उपमा, कुबेर ने उभयालंकार तथा चितांगद ने चित्र-काव्य से संबंध ग्रंथों का निर्माण किया। वस्तुत: यह ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। प्रामाणिक तौर पर सबसे पहले भरतमुनि ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में चार अलंकारों की बात कही हैं- उपमा, रूपक, दीपक और यमक।

प्रकृत अर्थ में अलंकार सिद्धांत को प्रवर्तन करनेवाले आचार्य छठी शताब्दी के भामह है। जिन्होंने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में 38 अलंकारों का निरूपण किया और काव्य में अलंकारों का अनिवार्यता घोषित किया। भामह ने अलंकार को आवश्यक तत्व स्वीकारते हुए उल्लेख किया है-

'न कान्तमपि निर्भुषं विभाति बनितामुखम।'

अर्थात् काव्य बिना अलंकारों से शोभित नहीं हो सकता, जिस प्रकार किसी सुन्दर स्त्री का मुख अलंकारों के बिना शोभा नहीं पाता।

आचार्य दंडी अलंकार संप्रदाय के दुसरे प्रमुख आचार्य है। भामह के अनुकरण पर ही दंडी ने अलंकार शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है-

'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारन् प्रचक्षते।'

अर्थात् काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म को ही अलंकार कहा जाता है। इन्होंने अंलकारों के 39 भेद मानी है।

वामन ने अलंकार को परिभाषित करते हुए लिखा है-

'कव्याशोभाया: कर्तारो धर्म गुणा:।'

यदि काव्य शोभाकारक धर्म है, तो अलंकार उस शोभा को बढ़ानेवाला तत्व है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- सबसे पहले भरतमुनि ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में चार अलंकारों का उल्लेख किया था- उपमा, रूपक, दीपक और यमक।

अलंकारवादी आचार्य उद्भट का समय आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। उद्भट द्वारा लिखा गया अलंकार संबंधित ग्रन्थ का नाम हैं 'काव्यालंकार सार संग्रह'। उद्भट ने 41 अलंकारों का उल्लेख किया है। इन्होंने पूर्ववर्ती अलंकारवादी आचार्य से आगे निकलकर पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, काव्य हेतु, काव्य दृष्टांत और संकर नामक नवीन अलंकारों की उद्भावना की।

9 वीं शती के पूर्वार्द्ध में आचार्य रुद्रट ने 'काव्यालंकार' की रचना की थी। रुद्रट ने सर्वप्रथम अलंकारों का वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया।

जयदेव ने अलंकारों को अनिवार्य तत्व मानते हुए अलंकारविहीन रचना को उष्णता-रहित अग्नि की भांति व्यर्थ माना है। उन्होंने लिखा है-

'अंगीकरोति य: काव्यं शब्दार्थवानालंकृति।
असौ न मन्यते कस्मादनुषणमनलं कृती।।'

आचार्य केशवदास ने अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्व मानते हुए कहा है-

'जद्यपि सुजाति सुलच्छणी सुवरण सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजै कविता वनिता मित्र।'

उनका अभिप्राय है यह कि अन्य गुणों से संपन्न होने पर भी कविता के लिए अलंकार अनिवार्य है, जिनके अभाव में वह शोभा नहीं पा सकती।



8.5 सारांश

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अलंकार मूलत: काव्य के शोभाकारक तत्व है। अलंकारवादी आचार्यो के अपने अपने ढंग से अलंकारों पर विचार किया है और इसकी आवश्यकता काव्यशास्त्र में होना अत्यावश्यक माना है।



8.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : अलंकारों का काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। किसी तथ्य, अनुभूति, घटना या चरित्र की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों का उपयोग होता है। अलंकार के स्वरूप एवं अवधारणा को स्पष्ट करने से पहले हमें अलंकार क्या है उसे जान लेना आवश्यक है। अधिक जानकारी के लिए पढ़ें **'अवधारणा एवं स्वरूप।'**



8.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. काव्यालोचन- ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री', आर्य बुक डिपो, दिल्ली।
3. काव्यदर्पण- रामदहीन मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. भारतीय काव्यशास्त्र (भाग 1 और भाग 2)- बलदेव उपाध्याय, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।
5. अलंकार धारणा: विकास और विश्लेषण- शोभाकांत मिश्र, बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना।



8.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए-

1. दंडी के अनुसार अलंकार क्या है?
2. किन्हीं दो अलंकारवादी आचार्यों का नाम उल्लेख कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए-

1. अलंकार से आप क्या समझते हैं? प्रमुख अलंकारवादी आचार्यों के मतों पर आलोचना कीजिए।
2. अलंकार को परिभाषित करते हुए काव्यशास्त्र में इसकी क्या भूमिका है? इस पर एक आलेख प्रस्तुत कीजिए।
3. 'न कान्तमपि निर्भुषं विभाति बनितामुखम' किसने कहा था? इसका तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 9 : अलंकार संप्रदाय-2

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 अलंकार के प्रकार

9.3.1 शब्दालंकार

9.3.2 अर्थालंकार

9.3.3 उभयालंकार

9.4 सारांश

9.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

9.6 अधिक जानने के लिए पढ़ें

9.7 अभ्यास प्रश्न

9.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप -

- अलंकार के भेद को जान सकेंगे।
- साहित्य में शब्दालंकार और अर्थालंकारों के प्रयोगों की आवश्यता को जान पायेंगे।
- अलंकार के विविध रूपों से परिचय प्राप्त करेंगे।

9. 2 प्रस्तावना

अलंकारों का संबंध काव्य के कलापक्ष से होता है। जिसका प्रयोग नितांत सरल और स्वाभाविक है। उक्ति वैचित्य के अनेक रूप हो सकते हैं, वही अलंकार है। नीचे अलंकारों के प्रमुख भेदों पर चर्चा उल्लेख है।

9.3 अलंकार के प्रकार

अलंकार मूलत: तीन प्रकार के होते हैं - शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार।

9.3.1 शब्दालंकार

जब अलंकार किसी शब्द विशेष पर अवलंबित होता है अर्थात् उस शब्द विशेष के स्थान पर अन्य समानार्थक रख देने पर अलंकार का अस्तित्व ही समाप्त हो

जाए तो उसे शब्दालंकार कहते हैं।

शब्दालंकार के निम्नलिखित भेद होते हैं- 1. अनुप्रास 2. यमक 3. श्लेष 4. वक्रोक्ति 5. चित्र।

1. **अनुप्रास :** अनुप्रास का लक्षण 'अनुप्रास' शब्द की व्याख्या में ही निहित है। इस शब्द के तिन खंड हैं- अनु = पश्चात, बाद में

प्र = चमत्कारदायक

आस = पास-पास प्रयोग। अर्थात् वर्ण समूह के पश्चात उसी वर्ण अथवा वर्ण समूह का चमत्कारपूर्ण एक से अधिक बार पास-पास प्रयोग होना ही अनुप्रास कहलाता है। जैसे-

'आँखे अध् खुली, अध् खुली खिड़की है खुली।
अध खुली आनन पै अध खुली अलकैं।'

(यहाँ 'अ' वर्ण का प्रयोग एक से अधिक बार हुआ है।)

अनुप्रास अलंकार के पांच भेद होते हैं-

क) छेकानुप्रास- छेक शब्द का अर्थ है - चतुर, विद्वध। जहाँ एक या अनेक वर्णों का दो बार प्रयोग होता है, वहाँ छेकानुप्रास होता है। उदाहरण-
'बनती है मुस्कान तुम्हारी शीतलशशि की रेखा।'

ख) वृत्यानुप्रास- जहाँ पर एक ही वर्ण या अनेक वर्णों की क्रमानुसार एकाधिक बार आवृत्ति (दो से अधिक बार प्रयोग) हो, वहाँ वृत्यानुप्रास अलंकार होता है। उदाहरण-
'मधुरबाला का मधुर मधु मुग्ध राग।' (यहाँ म, ध की क्रमानुसार अनेक बार आवृत्ति हुई है।)

ग) श्रुत्यानुप्रास- एक ही उच्चारण स्थान (कंठ, तालू आदि) से उच्चारित होने वाले व्यंजनों की जहाँ आवृत्ति हो वहाँ श्रुत्यानुपास होता है। उदाहरण-
'मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरी होय।'

(यहाँ म, भ, ब ओष्ठ्य व्यंजनों की और राधा नागरी में दन्त्य वर्णों की आवृत्ति होने के कारण श्रुत्यानुप्रास है।)

घ) लाटानुप्रास- जब किसी कथन में ऐसे शब्दों या वाक्यों की आवृत्ति होती है, जिनका अर्थ तो समान होता है, परन्तु पद में अन्वय करने से पुरे कथन का अर्थ भिन्न हो जाता है, वहाँ लाटानुप्रास होता है। उदाहरण-

'पूत सपूत तो क्यों धन संचय।
पूत कपूत तो क्यों धन संचय।'

(यहाँ पूत, तो, क्यों धन, संचय शब्द दो-दो बार आए हैं, अर्थ भी उनके एक ही है, परन्तु पहले शब्दों में सपूत शब्द के साथ और दुसरे वाक्य में कपूत शब्द

के साथ अन्वय होने से वर्ण में परिवर्तन हो गया है, इसलिए यहाँ लाटानुप्रास है।)

ङ) अन्त्यानुप्रास- जहाँ पद चरण के अंत में समान वर्ण आने से तुक मिलती है, वहाँ अन्त्यानुप्रास होता है। उदाहरण-

'वह आता
दो टुक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।'

(यहाँ आता, करता, आता में 'त' वर्ण का अंत में प्रयोग होने से अन्यानुप्रास है।)

2. **यमक अलंकार :** यमक का अर्थ है दो युग्म, जोड़ा आदि। अर्थात् भिन्नांक शब्दों की क्रमशः आवृत्ति ही यमक है। सरल शब्दों में अगर कहा जाय तो कह सकते है कि 'जहाँ पर शब्द की अनेक बार भिन्न अर्थों में आवृत्ति होती है, उसे ही यमक अलंकार माना जाता है'। उदाहरण-

'पास हीरे हीरे की खान।'

यहाँ 'हीरे' शब्द भिन्नार्थक है अतः यमक है। यमक के दो भेद हैं- अमंग पद यमक और समंग पद यमक।)

क) अमंग पद यमक- 'पावक सो नयन नुलगै जावक लाग्यौ भाल'

ख) समंग पद यमक- 'बार जीते सर मौन के ऐसे देख मैन।
हरिनी के नैनन तो हरिनी के ये नैन।'

3. **श्लेषः** 'श्लेष' शब्द 'श्लिष' धातु से बना है जिसका अर्थ है, चिपकना, मिलना, संयोग आदि। अर्थात, ऐसे शब्द का प्रयोग जिसमें एक से अधिक अर्थ चिपके हों, उसे श्लेष कहते हैं। उदाहरण-

'किसकी बिछुड़न न उर से सम्हाली गई।
लाज का जल धुला धार बहने लगी।'

यहाँ लाज का जल से तीन अर्थ निकलता हैं- लज्जा का जल, लज्जा, काजल। सामान्यतः श्लेष को दो भागों में बाँटा गया हैं- समंग श्लेष और अमंग श्लेष।

क) समंग श्लेष- जहाँ श्लिष्ट शब्दों में भंग करने पर अनेक कार्य निकलें, वहाँ यह भेद होता है। जैसे-

'चरण धरत चिंता करत, चितवत चारहु ओर।
सुबरन को खोजत फिरै, कवि व्यभिचारी छोर।'

(यहाँ सुवरण से सुन्दर वर्ण वाली कविता (कविता पक्ष में), सुन्दर वर्ण वाली स्त्री (व्यभिचारी पक्ष में), सुवरण-स्वर्ण (छोर के अर्थ में) प्रयोग हुआ है, अतः यह समंग श्लेष का उदाहरण है।

ख) अमंग श्लेष- जहाँ श्लिष्ट शब्दों के बिना भंग किए अनेक अर्थ निकले वहाँ यह भेद होता है, जैसे-

'रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सुन।
पानी गए न ऊबरे मोती मानुष चुन।'

पानी शब्द शिल्ष्ट है, जिसके क्रमश: तीन अर्थ हैं-

1. मोती के पक्ष में पानी का अर्थ चक्षरु है।
2. मनुष्य के पक्ष में पानी का अर्थ प्रतिष्ठा है।
3. चुना के पक्ष में पानी का अर्थ जल है।

4. **वक्रोक्ति अलंकार :** वक्रोक्ति का अर्थ है 'वक्र + उक्ति' अर्थात् टेढ़ा कथन। इसमें कहनेवाला कहता किसी ओर तात्पर्य से है, पर सुनने वाला उससे भिन्न कुछ ओर ही अर्थ ग्रहण कर लेता है। इसके दो भेद होते हैं- श्लेष वक्रोक्ति और काकू वक्रोक्ति।

क) श्लेष वक्रोक्ति- इसमें वक्ता की अन्यार्थक उक्ति का श्रोता श्लेष द्वारा भिन्न अर्थ ग्रहण करता है। इसमें श्लिष्ट शब्द का प्रयोग होता है, जिससे श्रोता वक्ता के अभिप्राय से भिन्न अर्थ ग्रहण करता है। उदाहरण-

'खोलोज किवार, तुम को हो एती बार
'हरि' नाम है हमारी, बसो कानन पहार में।'

इसमें राधा और कृष्ण का परिहास वर्णित है। कृष्ण अपना नाम 'हरि' बताते हैं। राधा श्लेष से 'हरि' का अर्थ 'कृष्ण' न लेकर बंदर और सिंह लेती है। अत: यहाँ श्लेष वक्रोक्ति है।

ख) काकू वक्रोक्ति अलंकार- इसमें वक्ता के अन्यार्थक कथन का श्रोता काकु (कंठस्वर की भिन्नता) द्वारा भिन्न अर्थ ग्रहण करता है। 'काकु का अर्थ है 'कंठ ध्वनि, का विकार'। कंठ ध्वनि में परिवर्तन हो जाने से एक ही कथन का अर्थ भिन्न हो जाया करता है। उदाहरण-

'मैं सुकुमारी नाक बन जोगु
तुमहि उचित तप यों कह भोगू।'

यहाँ राम के प्रति सीता की उक्ति है। 'हाँ आप ठीक ही तो कहते हैं, मैं ठहरी सुकुमारी और आप हैं वैन के योग्य। आपके लिए तो तपस्या ही उचित है और मेरे लिए भोग।' यह उक्ति साधारण है मगर कंठस्वर की भिन्नता ने इसे निषेधात्मक बना दिया है - 'यदि वैन जाने योग्य मैं नहीं हूँ तो आप भी उस योग्य नहीं है। यदि आपके लिए तपस्या उचित है, तो मेरे लिए भी तपस्या ही उचित है।' अत: यहाँ परिवर्तित कंठ स्वर के कारण 'काकु वक्रोक्ति' है।

5. **चित्र अलंकार :** चित्रालंकार में वर्णों या शब्दों को इस प्रकार प्रयोग किए जाते हैं जैसे कि एक चित्र हो। इसको अलंकार न मानकर इसे एक अलग काव्यकोटि भी माना जाता है।

इसके अतिरिक्त शब्दालंकार के पुनरुक्तिप्रकाश, पुनारुक्तिवदाभास और वीप्सा नामक तीन अलंकार नजर आते हैं।

जहाँ भाव को अधिक प्रभावपूर्ण और रुचिकर बनाने के लिए शब्द का अनेक बार प्रयोग किया जाता है, वह पुनारुक्तिप्रकाश अलंकार होते हैं। जैसे-

'मधुमास में दासजू बीस बिसे मनमोहन आइहैं आइहैं आइहैं।
उजरे इन भौनन को सजनी सुख पुंजन छाइहैं छाइहैं छाइहैं।
अब तेरी सों ऐरी न संक एकंक बिथा सब जाइहैं जाइहैं जाइहैं।
घनश्याम प्रभा लखिकै सखियाँ अँखियाँ पाइहैं पाइहैं पाइहैं।।'

पुनरुक्तिवदाभास में समानार्थी शब्दों के प्रयोग से पुनरुक्ति-सी जान पड़ती है, पर वास्तव में पुनरुक्ति होती नहीं हैं। उदाहरण

'अली भौंर गुंजन लगे, होने लगे दल पात।
जंह तंह फुले रुख तरु, प्रिय प्रीतम किमी जात।'

वीप्सा में आदर, घृणा आदि का प्रकाशन शब्दों की पुनरुक्ति द्वारा होता है। जैसे-

'शिव शिव शिव! कहते हो यह क्या, ऐसा फिर मत कहना।
राम राम! यह बात भूलकर मित्र कभी मत गहना।।'

9.3.2 अर्थालंकार

जहाँ काव्य में अर्थगत चमत्कार की प्रधानता होती है, अर्थात् शब्द का पर्याय रख देने पर भी अर्थ तथा अलंकारगत सौंदर्य खंडित नहीं होता, वहाँ अर्थालंकार होता है। अर्थालंकारों की संख्या अनंत हैं। जैसे- 1. उपमा 2. रूपक 3. उत्पेक्षा 4. प्रतीक 5. उदाहरण 6. निदर्शना 7. दीपक 8. अतिशयोक्ति 9. अलौकिक 10. भ्रांति 11. संदेह 12. उल्लेख 13. स्मरण आदि।

उपमा अलंकार : दो भिन्न वस्तुओं को उपमेय और उपमान के निकट रखकर उनकी समानता स्थापित करना ही उपमा है। उस दो भिन्न वस्तुओं में समानता स्थापित करने के लिए उनके रूप, गुण क्रिया आदि विशेषताएँ ही आधार बनायी जाती है। उदाहरण -

'मुख चंद्रमा के समान सुन्दर है'-

यहाँ मुख' उपमेय जैसे छोटे अंग का सादृश्य प्रतिपादन 'चंद्रमा' जैसे विशाल 'ग्रह' से किया है। यहाँ दोनों में पर्याप्त वैषम्य होते हुए भी 'अह्लाद्कत्व' नामक सादृश्य है। उपमा के चार अंग हैं- उपमेय, उपमान, धर्म और वाचक। काव्य में जिसकी समान

गुण धर्म के आधार पर तुलना की जाती है वह उपमेय है। उपमेय की तुलना जिस वस्तु से की जाती है वह उपमान है। जो उपमेय और उपमान के बीच समानता को दर्शाते हैं, उन्हें वाचक कहते हैं।

रूपक अलंकार :इसका शाब्दिक अर्थ है, रूप धारण करना। प्रस्तुत (उपमेय) में अप्रस्तुत (उपमान) का निषेधरहित आरोप ही रूपक है। आरोप का अर्थ है प्रसंदन को अप्रस्तुत द्वारा ढका जाना। यहाँ पार्थक्य भाव मिट जाता है और दोनों प्रस्तुत अप्रस्तुत अभिन्न हो जाते हैं। जैसे- 'मुख चन्द्र' में मुख पर 'चंद्र' का आरोप होने से दोनों में तादात्म्य संबंध स्थापित हो गया है। उदाहरण-

'मानस मंदिर में सती पति की प्रतिभा थाप।
जलती-सी उस विरह में बनी आरती आप।।'

(यहाँ प्रस्तुत में अप्रस्तुत का निषेध रहित आरोप है। अत: रूपक अलंकार। रूपक के भेद इस प्रकार हैं- सांग रूपक, निरंग रूपक, परम्परित रूपक।

क) सांग रूपक अलंकार- जहाँ अवयवों सहित उपमेय पर उपमान का आरोप होता है। जहाँ प्रस्तुत में अप्रस्तुत के निषेध रहित सावयव आरोप हो, वहाँ सांग-रूपक होता है। सांग का अर्थ है- अंगों के साथ। इसे सावयव रूपक भी कहा जाता है। इसमें प्रधानता एक आरोप की ही होती है। जिसे अंगी कहा जाता है। शेष आरोप गौण होते हैं और वे उसके अंग होकर आते हैं। जैसे-

बीती विभावरी जाग री।
अम्ब-पनघट में डुबो रही, तारा-घट उषा नागरी।

यहाँ उषा में नागरी का, अम्बर में पनघट का और तारा में घर का आरोप किया गया है। 'उषा' में नागरी का आरोप ही प्रधान है और शेष गौण आरोप हैं। अत: सांग रूपक है।

ख) निरंग रूपक- जहाँ प्रस्तुत में अप्रस्तुत का निषेध रहित निरवयव आरोप हो वहाँ निरंग रूपक होता है। निरंग या निरवयव का अर्थ है- अंगों के बिना। अर्थात् जहाँ मात्र एक उपमेय में एक उपमान का आरोप हो। 'मुखचंद' चरण कमल आदि इसी के उदाहरण हैं। जैसे-

'चरण-कमल बन्दौ हरि राई।'

(यहाँ एक उपमेय (चरण) में एक उपमान (कमल) का आरोप होने से शुद्ध निरंग रूपक है।

ग) परम्परित रूपक- इसमें एक आरोप दुसरे आरोप का कारण होता है। जहाँ एक आरोप दुसरे आरोप के कारण रूप में अवस्थित होता है, वहाँ परम्परित रूपक होता है। 'परम्परित' का अर्थ है 'सिलसिलेवार' 'परस्पर' से लगातार अथवा आश्रित। यहाँ कार्य-कारण भाव से आरोप की श्रृंखला बंध जाती है। उदाहरण-

'राम नाम सुन्दर करतारी।
संशय विहग उड़ावन हारी।'

यहाँ राम नाम 'करतारी' का और 'संशय' में विहग का आरोप है। 'राम नाम' में 'करतारी (ताली) के आरोप का कारण है। 'संशय' में विहग' का आरोप होना। संदेह (संशय) को पक्षी (विहग) मानने के पश्चात राम नाम को ताली (ताली बजाने से पक्षी उड़ जाते हैं) कहना उचित ही है। ये आरोप एक दुसरे के कारण ही सार्थक है। अत: परम्परित रूपक है। उदाहरण-

'बाड़व ज्वाला ओटी थी,
इस प्रणय-सिंधु के ताल में।
प्यासी मछली-सी आँखे,
थी विकराल रूप के जाल में।'

यहाँ आँखों में मछली का आरोप, रूप में जल के आरोप का कारण है। अत: यहाँ शुद्ध परम्परित रूपक है।

उत्पेक्षा : इसका अर्थ है (उत + प्र + ईक्षा) अर्थात् उपमान की संभावना की जाती है, वहाँ उत्पेक्षा होती है। उत्पेक्षा के तीन भेद हैं- वस्तुत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा, हेतुत्प्रेक्षा।

वस्तुत्प्रेक्षा : एक वस्तु (उपमेय) में दूसरी वस्तु (उपमान) की संभावना वस्तुत्प्रेक्षा है। यहाँ उत्प्रेक्षा काव्याश्रय होने से वस्तुत्प्रेक्षा है। उदाहरण-

'सोहल ओढ़े पीत पटु, श्याम सलोने गात।
मनो नीलमणि सैल पर, अटप परयौ प्रभात।'

यहाँ श्री कृष्ण के श्याम गात पर पीत पट की शोभा की उत्पेक्षा नीलमणि पर्वत पर पड़ने वाली प्रभातकालीन रश्मियों से की गयी है। अत: एक वस्तु (उपमेय) (पहली पंक्ति में) दूसरी वस्तु उपमान की उत्पेक्षा होने से वास्तुत्पेक्षा है।

फलोत्प्रेक्षा - असफल की फल में संभावना करना फलोत्प्रेक्षा है। इसमें जो फल नहीं होता है, उसमें फल की उत्पेक्षा की जाती है। उदाहरण-

'तुव पद समता कौ कमल जल सेवत इक पांय।'

यहाँ असफल में फल की संभावना की गयी है। अत: फलोत्प्रेक्षा है।

हेतुत्प्रेक्षा- जो वास्तव में कारण न हो उसे कारण मानकर उत्प्रेक्षा करना। जैसे-

'मनो चली आंगन कठिन ताते सटे पांय।'

मानो नायिका कठिन आँगन में चली है, इसी से उसके पैर लाल हैं। यहाँ आंगन की कठोरता के कारण नायिका के पैरों का लाल होना अंकित है। वस्तुत: यह कारण है नहीं। उसमें ललाई स्वाभाविक है। आंगन में चलने से ललाई नहीं हुई है। इस प्रकार अकारण में कारण की संभावना होने से हेतुत्प्रेक्षा है।

भ्रांतिमान : जहाँ उपमेय उपमान लगने लगे अर्थात् जब समानता के कारण एक वस्तु में किसी दूसरी वस्तु का भ्रम हो, वहाँ भ्रांतिमान अलंकार होता है। उदाहरण–

'पांय महावर देन को, नाइन बैठी आय।
फिर-फिर जान माहवारी, एंडी मिड़ति जाय।।'

इस उदाहरण में उपमान महावर है और उपमेय नायिका की लाल एड़ी है। लाल रंग की समानता के कारण नायिका के पैरों में महावर लगते समय नाइन को भ्रम हो रहा है। अत: भ्रांतिमान अलंकार है।

संदेह अलंकार : जहाँ प्रस्तुत (उपमेय) में अप्रस्तुत (उपमान) का संशयात्मक ज्ञान समानता के कारण हो वहाँ संदेह अलंकार होता है। इसमें अनिश्चय की स्थिति बनी रहती है।

उदाहरण–

'बिरह है या अखंड संयोग
शाप है या है यह वरदान।'

यहाँ विरह प्रस्तुत है और अखंड संयोग, शाप एवं वरदान अप्रस्तुत। प्रस्तुत और अप्रस्तुत में संदेह बना हुआ है। अत: संदेह अलंकार है।

व्यतिरेक अलंकार: जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय का विशेष अतिरेक (गुनोत्कर्ष) होता है, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। उदाहरण–

'का सर्वर तेहि देउ मयंकू।
चाँद कलंकी वह निकलंकू।।'

प्रस्तुत उदाहरण में पद्मावती का ललाट उपमेय है, द्वितीय के चंद्रमा की ज्योति उपमान है। चंद्रमा की ज्योति (उपमान) नायिका के ललाट (उपमेय) से कम है, अत: यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

अन्योक्ति अलंकार : जहाँ अप्रस्तुत समान वस्तु से प्रस्तुत समान वस्तु की प्रतीति कराई जाए, वहाँ अन्योक्ति अलंकार होता है। उदाहरण–

'नहीं पराग नहीं मधुर मधु, नहिं विकास यही काल।
अली कलि ही सौं बिंध्यौं, आगे कौन हवाल।।'

यहाँ अप्रस्तुत भ्रमर और कलि से प्रस्तुत राजा जयसिंह को उनकी नयी रानी के प्रति आसक्ति से हटाकर उन्हें राजकाज की ओर प्रवृत्त करना है। अत: यहाँ पर अन्योक्ति अलंकार है।

विभावना : जहाँ कारण के अभाव में कार्य संपन्न होता है, वहाँ यह अलंकार होता है। उदाहरण–

'बिनु पद चलै, सुनै बिनु काना।
कर बिनु करै कर्म विधि नाना।।'

यहाँ बिना पैरों के चलना, बिना कानों के सुनना, बिना हाथों के अनेक कार्य करना आदि कार्य संपन्न हो रहे हैं। अत: विभावना अलंकार है।

मानवीकरण अलंकार : इसका शाब्दिक अर्थ है, मानव करना अर्थात् जो वस्तुत: मानव नहीं है उसमें मानवीय गुण क्रियाओं का आरोप कर उसे मानव बनाना। दुसरे शब्दों में, प्रकृतिजन्य पदार्थों में मानवीय गुणों का आरोप ही मानवीकरण कहलाता है।

उदाहरण–

'धीरे-धीरे हिम अच्छादन हटने लगा धरातल से।
जगी वनस्पत्तियाँ अलसाई मुख धोती शीतल जल से।।'

यहाँ वनस्पतियों का जगना, अलसाना और शीतल जल से मुख धोना मानवी क्रियाएँ हैं। अत: मानवीकरण अलंकार है।

उदाहरण–

'धीरे-धीरे हिम।'

स्मरण अलंकार : किसी सदृश वस्तु को देखकर जहाँ पुर्वानुभूत वस्तु का स्मरण हो जाता है, वहाँ पर स्मरानालंकार होता है। जैसे

'बीच बास करी जमुन नहाये।
निरखि नीर लोचन जल छाये।
ज्यों ज्यों आईटी देखियत मुरुख विमुख लोग,
त्यों त्यों व्राजबासी सुखरासी मन भावै हैं।
खरे जल चीलर दुखारे अंधकूप देखि,
कालिंदी के कुल काज मन ललचावै हैं।'

अतिशयोक्ति अलंकार : जहाँ पर लोक सीमा का अतिक्रम करके किसी विषय का वर्णन होता है, वहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार माना जाता है। उदाहरण–

'हिलते द्रुमदल कल किसलय
देती गलबाहीं डाली
फूलों का चुंबन छिड़ती
मधुपों की तान निराली।'

दृष्टांत अलंकार : जहाँ दोनों सामान्य या दोनों विशेष वाक्य में बिंब-प्रतिबिंब भाव होता है, वहाँ पर दृष्टांत अंलकार होता है। उदाहरण

'पंगी प्रेम नंदलाल के, हमें न भावत भोग।
मधुप राजपद पाय के, भीख न मांगत लोग।'

विरोधाभास अलंकार : जहाँ पर किसी वस्तु, गुण या क्रिया में विरोध दिखलाई पड़े, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। उदाहरण–

'कट बेकाज चलाइयत, चतुराई की चाल।
कहे देत यह रावरे सब गुन, बिन गुन माल।।'

9.3.3 उभयालंकार

शब्द और अर्थ दोनों पर समान रूप से आश्रित होने के कारण ही इसे उभयालंकार नाम मिला है। इसमें शब्द और अर्थ दोनों में समान बल होना आवश्यक है। इसके भी दो भेद स्वीकार किए गए हैं- संसृष्टि और संकर। उदाहरण-

'मनीमाय रचित चारों चौबरे। जणू रतिपति निज हाथ सवारे।'



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. वक्रोक्ति अलंकार किसे कहते हैं? वक्रोक्ति अलंकार के प्रकारों पर विचार कीजिए।

प्रश्न 2. उपमा अलंकार को परिभाषित करते हुए उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।



9.4 सारांश

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि अलंकार के अनेक भेद होते हैं, जिनके माध्यम से हम अभिव्यक्ति-संबंधी सौंदर्य की विशेष पहचान कर सकते हैं। अभिव्यक्ति-सौष्टव्य की विश्लेषण में अलंकारों का मानदंड हमारे लिए विशेष सहायक-सिद्ध है।



9.5 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न1 का उत्तर : वक्रोक्ति का अर्थ है 'वक्र + उक्ति' अर्थात् टेढ़ा कथन। इसमें कहनेवाला कहता किसी ओर तात्पर्य से है, पर सुनने वाला उससे भिन्न कुछ ओर ही अर्थ ग्रहण कर लेता है। अधिक जानने के लिए '**वक्रोक्ति अलंकार**' को ध्यानपूर्वक पढ़ें।

प्रश्न 1 का उत्तर : दो भिन्न वस्तुओं को उपमेय और उपमान के निकट रखकर उनकी समानता स्थापित करना ही उपमा है। बेहतर जानकारी के लिए देखें '**उपमा अलंकार।**'



9.6 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. काव्यालोचन- ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री', आर्य बुक डिपो, दिल्ली।
3. काव्यदर्पण- रामदहीन मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. भारतीय काव्यशास्त्र (भाग 1 और भाग 2)- बलदेव उपाध्याय, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।
5. अलंकार धारणा : विकास और विश्लेषण- शोभाकांत मिश्र, बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना।



9.7 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए-

1. शब्दालंकार कितने प्रकार के होते होते हैं? प्रत्येक का नाम उल्लेख कीजिए।
2. टिपण्णी लिखिए-

   क) यमक अलंकार ख) वक्रोक्ति अलंकार

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए-

1. अलंकारों के भेद को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
2. अलंकार कितने प्रकार के होते हैं? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. अनुप्रास अलंकार किसे कहते हैं? इसके प्रमुख भेदों पर चर्चा कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 10 : रीति संप्रदाय

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 रीति की अवधारणा

10.4 रीति संप्रदाय की प्रमुख स्थापनाएँ

10.5 सारांश

10.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

10.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

10.8 अभ्यास प्रश्न

10.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- रीति के स्वरूप एवं अवधारणाओं को जान सकेंगे।
- काव्यशास्त्र में रीति की आवश्यता अथवा महत्व को जानेंगे।
- रीति संबंधी विद्वानों के मतों से परिचय प्राप्त करेंगे।

10.2 प्रस्तावना

भारतीय काव्यशास्त्र में रीति संप्रदाय का बहुत अधिक महत्व है। रीति संप्रदाय को अधिक महत्व प्रदान करनेवाले आचार्य वामन है। इन्होंने रीति को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकारा है। इनसे पूर्व भरत, भामह और दंडी ने रीति-विषय पर सामग्री प्रस्तुत की थी। वामन के बाद भी उद्भट, रुद्रट, कुंतक, भोजराज, मम्मट आदि ने इस पर आलोचना की है। लेकिन इनमें से आनंदवर्धन, मम्मट और विश्वनाथ प्रमुख है।

10.3 रीति की अवधारणा

रीति का कोशगत अर्थ है 'गमन-प्रणाली', जिससे जाया जाय या गतिशीलता हुआ जाय। अत: मार्ग, पथ, प्रणाली, पद्धति आदि इसके पर्यावाची शब्द है। काव्यशास्त्र में रीति से तात्पर्य है काव्यरीति, काव्यमार्ग अथवा काव्यपथ आदि। विद्वानों में भी रीति संबंधी धारना और इसके स्वरूप को लेकर विवाद है। रीति शब्द की व्युत्पत्ति है-

'रीयते गम्यतेनेनेतिरीति।'

अर्थात् वह मार्ग जिसके द्वारा गमन किया जाय।

10.4 रीति संप्रदाय की प्रमुख स्थापनाएँ

रीति संप्रदाय के प्रमुख आचार्य वामन है। उन्होंने रीति को 'काव्य की आत्मा' के रूप में स्वीकार करते हुए कहा :

'विशिष्ट पदरचना रीतिः। विशेषो गुनात्मा।'

अर्थात् विशिष्ट पद रचना ही रीति है और इसमें यह विशेषता गुणों के समावेश के कारण ही आती है। उनके अनुसार गुण काव्य के शोभाकारक धर्म है। जो शब्दगत भी है और अर्थगत भी। इन्होंने रीति के तीन भेद स्वीकार किए हैं- वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली। वैदर्भी में सभी गुण रहते हैं (दस शब्द गुण और दस अर्थगुण)। गौड़ीया में ओज और क्रांति दो गुण तथा पांचाली में माधुर्य और सौकुमार्य दो गुण रहते हैं।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. रीति संप्रदाय की अवधारणा पर विचार कीजिए।

आचार्य रुद्रट ने रीति की दुसरे आधार पर कल्पना की। उनकी कल्पना रीति को काव्यात्मा मानकर नहीं है। रुद्रट ने रीति के चार भेद किए हैं, जो गुणों पर आधारित न होकर समास पर आधारित है। इनके चार भेद हैं- वैदर्भी, पांचाली, लाटी और गौड़ी। प्रथम दो माधुर्य और सुकुमार गुणों से युक्त होने के कारण श्रृंगार, करुण, प्रयास आदि रसों की व्यंजक तथा अंतिम दो उग्र एवं उदात्त होने के कारण रौद्र, भयानक, वीर आदि रसों की व्यंजना करनेवाली रीतियाँ हैं।

'वक्रोक्तिजीवितम' में कुंतक ने रीति संबंधी अपनी धारणाएं प्रस्तुत की है। उन्होंने कहा है-

'सम्प्रति तत्र ये मार्गाः कविप्रस्थानहेतवः।
सुकुमारो विचित्रश्च मध्यमश्चोभयात्मकः।।'

इन्होंने काव्य शैली या रीति को देशविशेष की परम्परा के रूप में ही देखना उचित नहीं समझा। उनके अनुसार एक देश में प्रचलित रीति या शैली की विशेषताओं में कुछ दुसरे देश की रीतियाँ भी लगभग समान हो सकते हैं। इसकी कारण इन्होंने शुद्ध गुणों के आधार पर त्रिमार्ग का सिद्धांत निश्चित किया है। ये तीन मार्ग सुकुमार, विचित्र और मध्यम हैं। कुंतक ने सुकुमार और विचित्र दोनों मार्गों के अंतर्गत चार गुणों की प्रतिष्ठा की है- माधुर्य, प्रसाद, लावन्य और आभिजात्य।

आनंदवर्धन वामन के रीति-तत्व को स्वीकारते हुए इसे 'संघटना' नाम दिया और इसे समास-संबंध मानकर इसके तीन रूप स्वीकार किए। ये तीन रूप हैं- असमासा, अल्पसमासा, दीर्घसमासा। आनंदवर्धन से ही प्रेरित होकर मम्मट और विश्वनाथ ने रीति का लक्षण इस प्रकार

निर्धारित किए हैं।

मम्मट के अनुसार- नियत वर्णों का रस-विषयक व्यापार वृत्ति (रीति) कहता है।

विश्वनाथ के अनुसार- रीति कहते हैं पद-संघटना को। यह अंग-संस्था के समान है, अर्थात् काव्य-पुरूष रूपक में इसकी स्थिति शरीर के अवयवों की बनावट के समान है और इसी रूप में रहकर वह रस का उपकार करती है।

इन दोनों आचार्यों ने तीन रीतियाँ मानी- वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली और इसे क्रमश: माधुर्य, ओज और प्रसाद के रचनागत स्वरूप के साथ संबंध किया।



10.5 सारांश

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि काव्यशास्त्र में रीति का का मतलब एक पद्धति तथा शैली है। जिसे वामन ने काव्य की आत्मा माना है। असल में रीति एक ऐसी शब्द योजना है, जिसका प्रयोग वर्ण विषय के अनुकूल ही सुन्दर होता है। भारतीय काव्यशास्त्र में रीति के तीन प्रमुख तत्व नजर आते हैं- उपयुक्त शब्द-चयन, विषयानुकुल मंजुल अथवा गाढ़ पदबंध और स्पष्टता। उपयुक्त शब्द चयन और सष्टता सर्वत्र अपेक्षित है- इसे भारतीय दृष्टि से रचनागत प्रसाद गुण अथवा पांचाली रीति कहते हैं। मंजुल पद-बंधन में असमासता अथवा अल्पसमासता भी समाहित है और कोमल एवं मृसन वर्ण-योजना भी। इसे रचनागत माधुर्य अथवा वेदर्भी रीति मान सकते हैं। गाढ़ पद-बंधन में समास बहुलाता का समावेश भी है और कठोर एवं जटिल वर्ण-योजना का भी, जिसे रचनागत ओज गुण अथवा गौड़ी रीति कहते हैं।



10.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : रीति का कोशगत अर्थ है 'गमन-प्रणाली', जिससे जाया जाय या गतिशीलता हुआ जाय। अत: मार्ग, पथ, प्रणाली, पद्धति आदि इसके पर्यावाची शब्द है। काव्यशास्त्र में रीति से तात्पर्य है काव्यरीति, काव्यमार्ग अथवा काव्यपथ आदि।

अधिक जानने के लिए 'प्रस्तावना', 'रीति की अवधारणा', और 'रीति संप्रदाय की प्रमुख स्थापनाएँ' को ध्यानपूर्वक पढ़ें।



10.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. काव्यालोचन- ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री', आर्य बुक डिपो, दिल्ली।
3. काव्यदर्पण- रामदहीन मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. भारतीय काव्यशास्त्र (भाग 1 और भाग 2)- बलदेव उपाध्याय, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।



10.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1. वामन के अनुसार रीति के कितने भेद हैं? प्रत्येक का नाम उल्लेख कीजिए।
2. आनंदवर्धन के अनुसार रीति क्या है?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए-

1. रीति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य किसे माना जाता है और क्यों?
2. काव्यशास्त्र में रीति का आशय क्या है? रीति संबंधित आचार्यों के मतों पर आलोचना प्रस्तुत कीजिए।
3. भारतीय काव्यशास्त्र में उल्लेखित रीति के तीन प्रमुख तत्वों पर आलोचना कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 11 : वक्रोक्ति संप्रदाय

इकाई की रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 अवधारणा एवं स्वरूप

11.4 वक्रोक्ति के भेद

11.5 वक्रोक्ति एवं अभिव्यंजना

11.6 सारांश

11.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

11.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

11.9 अभ्यास प्रश्न

11.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगे-

- वक्रोक्ति के स्वरूप के बारे में।
- वक्रोक्ति की अवधारणा और भेद को।
- साहित्य में वक्रोक्ति का क्या महत्व है? उसके बारे में अवगत होंगे।

11.2 प्रस्तावना

वक्रोक्ति सिद्धांत के प्रतिष्ठापक आचार्य कुंतक है। लेकिन कुंतक से भी पहले इस सिद्धांत का बीज नजर में आते हैं।

वक्रोक्ति के प्रतिष्ठापक कुंतक ने बाणभट्ट के - वाक्छल क्रीड़ालाप, परिहास जल्पित, चमत्कार पूर्ण शैली, वचन विदग्धता आदि वक्रोक्ति शब्द के अर्थों की पृष्ठभूमि में वक्रोक्ति को वैदग्ध भंगी भणिति कहा है। उनके अनुसार काव्य-निर्माण की अपूर्व कुशलता से लोकोत्तर चमत्कार प्राण विचित्र कथन ही वक्रोक्ति है और इसी से अर्थ का विभाजन होता है। कुंतक के उपरांत इस सिद्धांत का अनुकरण भी नहीं हुआ और इस सिद्धांत का खंडन भी नहीं हुआ। विश्वनाथ ने इसे खंडन कराना चाहा मगर उनके तर्क अशास्त्रीय और असंगत सिद्ध हुए।

11.3 अवधारणा एवं स्वरूप

काव्यशास्त्र में रीति और अलंकार की भांति वक्रोक्ति शब्द का भी काव्यशास्त्र में पहले व्यापक और फिर संकुचित दोनों रूपों में प्रयोग हुआ। इसके व्यापक अर्थ का संकेत काव्यशास्त्र

के अतिरिक्त बाणभट्ट (छठी शताब्दी) के ग्रन्थ कादंबरी में भी मिलता है, जहाँ राजा शूद्रक को 'वक्रोक्ति-निपुण' कहा गया। अर्थात् कहा जा सकता है बाणभट्ट ने वक्रोक्ति मार्ग को अपनाया।

कुंतक से पहले भामह ने वक्रोक्ति के व्यापक अर्थ को समझते हुए इसे अतिशयोक्ति का पर्याय माना है और सब अलंकारों के लिए इसे अनिवार्य कहा है। इसी से ही अर्थ चमत्कृत हो उठता है। उनके अनुसार इसके बिना रचना यथार्थ काव्य न होकर कथन-समुदाय-मात्र अथवा वार्ता-मात्र रह जाती है।

वक्रोक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कुंतक ने कहा है- काव्य में शब्द और अर्थ अलंकार्य हैं तथा उन्हें शोभित करनेवाला तत्व है वक्रोक्ति। यह वक्रोक्ति ही काव्य का प्राणतत्व है। वक्रोक्ति को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा है-

'वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगि भणितितिरुच्यते।'

अर्थात् वैदग्ध्यभंगिभणिति ही वक्रोक्ति है। कुंतक के वक्रोक्ति में तीन गुण विद्यमान हैं-

क) शास्त्र तथा लोक-व्यवहार में प्रचलित कथन भंगिमा से भिन्नता

ख) कवि कौशलजन्य चमत्कार

ग) सहृदयाह्लादन की क्षमता।

वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित करनेवाले आचार्य कुंतक ही थे।

11.4 वक्रोक्ति के भेद

व्याकरण और काव्यशास्त्र के समन्वित आधार पर कुंतक ने वक्रोक्ति के छः भेद किए हैं-

1. वर्णविन्यास वक्रता
2. पद्पुर्वार्द्धवक्रता
3. पद्परार्द्ध वक्रता
4. वस्तु या वाक्य वक्रता
5. प्रकरण वक्रता
6. प्रबंध वक्रता

1. **वर्णविन्यास वक्रता :** इस वक्रता के अंतर्गत कुंतक ने व्यंजन वर्णों से उत्पन्न होनेवाले समस्त सौंदर्य-प्रकारों को लिया है। प्राचीन आचार्यों द्वारा वर्णित अनुप्रास तथा यमक शब्दालंकारों का उन्होंने इसी वक्रता में अंतर्भूत किया है। कुंतक ने इस वक्रता के भी कई भेदों का उल्लेख किया है। जो निम्न प्रकार हैं-

प्रथम प्रकार : वर्ण-विन्यास वक्रता का प्रथम प्रकार वह है, जहाँ स्वल्प व्यवधान के साथ एक या एकाधिक वर्णों का सन्निवेश सौन्दर्य संपन्न प्रतीत होता है। स्वल्पांतर को कुंतक ने संगीत सृष्टि के लिए आवश्यक माना है, अन्यथा अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

'इस करुणा-कलित हृदय में,
अब विकल रागिनी बजती।'

(यहाँ स्वल्प अंतर के साथ 'क' की सुन्दर आवृत्ति हुई है।)

द्वितीय प्रकार : जहाँ ककार से लेकर मकार तक पाँचों वर्गों के व्यंजन अंतिम वर्ण के साथ संयुक्त हो, त, ल, एवं न द्वित्व रूप में निबद्ध हो या शेष वर्गों का रकार के साथ संयोग हो, वहाँ यह भेद होता है। उदाहरण-

'बस एक श्रृंग पर हिम का,
था कम्पित कंचन झलमल।'

तृतीय प्रकार : तृतीय प्रकार वह है, जहाँ बिना व्यवधान के एक या एकाधिक वर्णों का विन्यास विशिष्ट सौन्दर्य उत्पन्न करता है। उदाहरण-

'सित्-सित् करनी बयार है बह रही,
बरस रहा खेतों में हिम हेमंत है।'

(यहाँ 'सित्-सित्' में कई वर्णों की बिना व्यवधान के आवृत्ति दर्शनीय है।)

चतुर्थ प्रकार : चतुर्थ प्रकार वह है, जहाँ ऐसा लगता है, जैसे एक सुकुमार वर्ण को अनायस आवृत्ति कर छोड़ दिया गया हो और दूसरे वर्ण की आवृत्ति स्वयं चल पड़ी हो। उदाहरण प्रस्तुत है -

'आज है केसर रंग रँगे
गह द्वार नगर वैन
जिनके विभिन्न रंगों में रंग गयी
पूनो की चन्दन चाँदनी।'

पंचम प्रकार : यहाँ एक या एकाधिक सदृश्य रुतिवाले वर्णों का व्यवहित या अव्यवहित उपनिबंध होता है, जिनका अर्थ अलग-अलग है और ये श्रुतिरंजक होने के साथ-साथ वार्न्विशय के औचित्य से पूर्ण रहा करता है। निसंदेह यह यमक ही है।

'तरणि के संग तरल तरंग में
तरणि डूबी थी हमारी ताल में।'

यहाँ प्रथम 'तरणि' का अर्थ है सूर्य और द्वितीय का नौका।

2. **पद्पुर्वार्द्ध वक्रता :** संस्कृत व्याकरण में पद, प्रकृति एवं प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। यदि पाचक शब्दों को लें तो यहाँ पछ धातु है, जिसे प्रकृति कहा जाता है और ण्वुल प्रत्यय। इसी व्याकरणिक आधार पर ही कुंतक ने पदवक्रता को दो भागों में विभाजित कर प्रकृति पक्ष को पद्पुर्वार्द्ध और प्रत्यय पक्ष को पद्परार्द्ध नाम दिया है। पदपुर्वार्द्ध वक्रता के निम्न उपभेद हैं

क) रूढ़िवैचित्र्य वक्रता: इसमें रूढ़ि या परम्परागत मान्यता का वैचित्र्य होता है।

ख) पर्याय वक्रता : किसी विशिष्ट पर्याय (समानार्थक शब्द) पर आश्रित वक्रता।

ग) उपचार वक्रता : भिन्न एवं दूरस्थ वस्तु का जब किसी वस्तु के साथ अभेद स्थापन किया जाता है, तब उपचार वक्रता होती है।

घ) विशेषण वक्रता : जहाँ विशेषणों के कारण वक्रता हो, वहाँ विशेषण वक्रता होता है।

ङ) संवृत्ति वक्रता : सर्वनाम के प्रयोग द्वारा संवृत्ति (वस्तु-गोपन) से प्राप्त वक्रता ही संवृति वक्रता है।

च) प्रत्यय वक्रता : जहाँ पर प्रत्यय द्वारा कोई विशेष औचित्य-संबंधी चमत्कार उत्पन्न हो, वहाँ प्रत्यय वक्रता होता है।

छ) वृत्ति वक्रता : समास, तद्धित, कृत आदि से युक्त वृत्तियों द्वारा प्राप्त वक्रता ही वृत्ति वक्रता है।

ज) लिंग वक्रता : पुलिंग अथवा स्त्रीलिंग के प्रयोग के कारण उत्पन्न होनेवाली वक्रता।

3. **पद्परार्द्ध वक्रता :** काव्य में प्रत्यय अंश से भी रम्यता उत्पन्न होती है। पुरूष, वचन, कारक आदि साधारणत: प्रत्यय में छिपे रहते हैं, इसलिए इस वक्रता को प्रत्यय-वक्रता कहा जाता है। कुंतक ने इसके कुछ भेद माने हैं-

क) कालवैचित्र्य वक्रता : जहाँ पर काल के अनुरूप काल के प्रयोग में चमत्कार आश्रित रहता है, वहाँ काल्वैचित्र्यवक्रता होती है।

ख) कारक वक्रता : जहाँ पर किसी विशेष अभिप्राय को प्रकट करने के लिए कारक में विपर्याय करके प्रयोग किया जाता है, उसे कारक वक्रता कहते हैं।

ग) संख्या (वचन) वक्रता : जहाँ पर एकवचन के स्थान पर बहुवचन या बहुवचन के स्थान पर एकवचन का प्रयोग किया जाय, वहाँ पर संख्या वक्रता होती है।

घ) पुरूष वक्रता : जहाँ पर पुरुषों में विपर्यय के द्वारा चमत्कार सम्पादित हो, वहाँ पर पुरूष वक्रता होती है।

ङ) उपग्रह वक्रता : वास्तव में परस्मैपद और आत्मनेपद धातुओं में से औचित्य के कारण किसी एक का प्रयोग करते हैं, वहाँ पर उपग्रह वक्रता होती है।

च) प्रत्यय वक्रता : छोटे-छोटे प्रत्ययों के प्रयोगों में जहाँ पर चमत्कार होता है, वहाँ पर प्रत्यय वक्रता होती है।

छ) उपसर्ग वक्रता : उपग्रह के प्रयोग कौशल के कारण उत्पन्न वक्रता ही उपग्रह वक्रता है।

ज) निपात वक्रता : निपात (अव्यय) के प्रयोग-कौशल के कारण उत्पन्न वक्रता ही निपात वक्रता है।

4. **वस्तु या वाक्य वक्रता :** वर्णित वस्तु का उत्कर्षशाली स्वभाव से सुन्दर रूप में वर्णन वस्तु वक्रता कहलाता है। वस्तु के स्वभाव के अनुरूप कभी कवियों को स्वाभाविक

सौंदर्य प्रकाशित करना अभीष्ट होता है और कभी रचना-वैचित्र्य से युक्त सौंदर्य को अंकित करना। प्रथम प्रकार के कवि अपनी प्रतिभा के बल पर वस्तु के स्वाभाविक सौंदर्य का वर्णन करता है- यह सहजा कहलाती है। द्वितीय प्रकार में कवि शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास के बल पर कवि-कौशल द्वारा वस्तु का अंकन करता है- यह आहार्या कहलाती है।

क) सहजा : सहज शोभा में वस्तु का प्रकृति वर्णन होता है। ऐसे स्थलों पर वस्तु स्वाभाविक रूप से रमणीय होती है, अत: कवि सूक्ष्म पर्यवेक्षण के आधार पर वस्तु का चित्रांकन करता है, रचना वैचित्र्य के आधार पर नहीं। रचना-वैचित्र्य से बचने का कारण यह है कि इससे वस्तु के स्वाभाविक सौकुमार्य में मलिनता आने का भय रहता है।

ख) आहार्या : कुंतक के अनुसार आहार्या प्रस्तुत सौन्दर्यरुपा होने पर भी अलंकार-वैचित्र्य के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इसमें कवि रचना- वैचित्र्य के बल पर वस्तु का कल्पनात्मक चित्र अंकित करता है, वर्ण्य के एक होने पर भी अभिव्यंजना-प्रणाली की भिन्नता के कारण शब्द-चित्रों में भिन्नता आ जाती है। उदाहरण प्रस्तुत है-

'पति सेवारत साँझ
उमकता देख पराया चाँद
ललकार ओट ही गयी।'

यहाँ सांध्य अरुणिमा के समय चंद्रोदय तथा संध्या का विलीन हो जाने की बात है मगर कवि-कौशल के आधार पर संध्या में पतिपरायण स्त्री, सूर्य में पति तथा चन्द्र से पाप शुद्धि परपुरूष का आरोप कर विषय को रम्य बना दिया है।

5. **प्रकरण वक्रता :** प्रबंध के एक देश या कथा के एक प्रसंग को प्रकरण कहते हैं। विभिन्न प्रकरणों के समुच्चय से ही प्रबंध बनता है। प्रकरण अंग है और प्रबंध अंगी। कुंतक ने प्रकरण वक्रता के निम्न भेदों का विवेचन किया है-

क) भावपूर्ण स्थलों की उद्भावना : जिससे पात्रों के चरित्र का उत्कर्ष हो, जैसे-

'आया फिर तू राम, कोख में मानो मेरी
लक्ष्मण, मेरी गोद रहे, शिशु-शैया तेरी।
जन्म-जन्म में यही कोख जननी मैं पाऊं
माँ, मैं लक्ष्मण इसी गोद में पलता जाऊं।'

ख) उत्पाद्य-लावण्य : ऐतिहासिक कथावस्तु में कवि-कल्पना द्वारा मधुर काव्य-सौन्दर्य की उत्पत्ति। इसके दो रूप हैं- अविद्यमान की कल्पना और विद्यमान का संशोधन।

ग) प्रमुख कथा और प्रासंगिक कथाओं में उपकार्योंप्रकारक भाव: यहाँ प्रासंगिक

कथाएँ एक दुसरे का उपकार करती हुई अंतत: प्रमुख कार्य (फलबंध) का उपकार करते हैं।

घ) प्रकरण विशेष की अतिरंजना : कथा के किसी प्रकरण का मनोग्राही वर्णन प्रसंग को वक्रतापूर्ण बना देती है।

ङ) रोचक प्रकरणों की अवतारणा : षड ऋतू, चंद्रोदय, सूर्योदय, जलक्रीड़ा, मधुपान आदि का रोचकतापूर्ण विवरण वक्रता- उदाहरण रघुवंश में कुश की जलक्रीड़ा का वर्णन, प्रियप्रवास में रास-क्रीड़ा का वर्णन आदि।

च) अवांतर वस्तु योजना : अप्रधान किन्तु सुन्दर प्रसंग की उदभावना द्वारा कथावस्तु की सिद्धि।

छ) गर्भाक योजना : नाटक के एक अंक में एक लघु अंक की रचना, जिसमें एक कुशल नट सामाजिक का रूप ग्रहण कर ले। जैसे- राजशेखर के 'बाल रामायण' नाटक के तीसरे अंक में उल्लेखित 'सीता-स्वयंवर' नामक गर्भाक।

ज) संधिविनिवेश : विभिन्न प्रकरणों की परस्पर अन्विति जहाँ मुख, प्रतिमुख आदि नाट्य-संधियों के माध्यम से विभिन्न प्रकरणों की परस्पर संबंधता होती हो।

6. **प्रबंध वक्रता :** प्रबंध-कल्पना ही कवि-प्रतिभा का निकष है। प्रबंध में कवि को दो धरातलों पर दृष्टि रखनी पड़ती है, जिस प्रकार पृथ्वी अपने अक्ष पर प्रतिदिन परिभ्रमण करती हुई भी वर्ष में सूर्य के चारों ओर की परिक्रमा पूर्ण करती है। कुंतक ने निम्न भेदों पर प्रकाश डाला है-



महत्वपूर्ण बिंदु

- वक्रोक्ति सिद्धांत का प्रवर्तक आचार्य कुंतक है।
- कुन्तक ने क्रोचे के अभिव्यंजनावाद को भारतीय वक्रोक्ति सिद्धांत का विलायती उत्थान माना है।

क) प्रबंधरस-परिवर्तन वक्रता: मूल कथा को हृदयग्राही बनाने के उद्देश्य से उसके मूल रस के स्थान पर किसी अन्य रस का निर्वहन। जैसे रामायण पर आधारित रामचरितमानस है तो शांतरस-प्रधान, पर इसके वातावरण में अपने आधार ग्रन्थ से भिन्नता आ गयी है।

ख) समापन वक्रता: कभी-कभी कवि नायक का उत्कर्ष दिखाने के उद्देश्य से इतिहास-प्रसिद्ध कथा के किसी विशेष प्रकरण पर आकर कथा की समाप्ति कर देता है, विशेषत: उस स्थिति में जब कथा का परवर्ती भाग कोरा इतिवृत्तामक या नीरस होता है। उदाहरण के तौर पर 'चन्द्रगुप्त' नाटक को लिया जा सकता है। जहाँ पर नाटककार नाटक की कथा को वही समाप्त कर देते हैं, जब चन्द्रगुप्त यवनों को निष्कासित कर देता है।

ग) कथाविच्छेद वक्रता : कथासूत्र का अनायास एवं आकस्मिक विच्छेद कभी-कभी अत्यंत चमत्कारपूर्ण हो जाता है, वही पर कथाविच्छेद वक्रता होता है।

घ) आनुषंगिक फलवक्रता : किसी विशेष फल की सिद्धि के लिए तत्पर होने पर अन्य फलों की भी प्राप्ति होने पर आनुषांगिक फलवक्रता होती है।

ङ) नामकरण वक्रता : प्रबंध-काव्य के नामकरण द्वारा कथा के मूल रहस्य को प्रकारांतर से सांकेतिक करने के माध्यम से प्राप्त वक्रता, जैसे- अभिज्ञानशाकुंतलम, मेघदूत, मुद्राराक्षस, साकेत, रंगभूमि कायाकल्प आदि। किन्तु इसके विपरीत शिशुपालवध, यशोधरा, प्रियप्रवास आदि नाम अभिधात्मक हैं। अत: इनमें उक्त वक्रता का अभाव है।

च) तुल्यकथा वक्रता : एक मूल कथा पर आधारित परस्पर-भिन्न प्रबंधों की रचना। उदाहरण के तौर पर रामायण पर आधारित वीरचरित, बाल रामायण, रामचरितमानस, साकेत आदि।

11.5 वक्रोक्ति एवं अभिव्यंजना

आचार्य कुन्तक ने क्रोचे के मत की समीक्षा करते हुए उनके अभिव्यंजनावाद को भारतीय वक्रोक्ति सिद्धांत का विलायती उत्थान माना है। इस पर काफ़ी चर्चा हुआ और कुंतक तथा क्रोचे के समय-वैषम्य पर विवेचन होने लगा। डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु, रामनरेश शर्मा, डॉ. नगेन्द्र आदि ने इस पर लेख लिखा। नीचे इन दोनों सिद्धांत के साम्य- वैषम्य पर आलोचना प्रस्तुत है-

साम्य :

क) दोनों ही आचार्य अभिव्यंजना को काव्य का प्राणतत्व मानते हैं।

ख) दोनों ही कलावादी हैं।

ग) दोनों आचार्य काव्यतत्व उक्ति में मानते हैं, वस्तु या भाव में नहीं।

घ) दोनों की दृष्टि में सौंदर्य अखंड है।

वैषम्य :

क) वक्रोक्तिवाद का संबंध उक्ति वक्रता से है, अभिव्यंजना का दर्शन है।

ख) वक्रोक्तिवाद साहित्यिकवाद है, अभिव्यंजनावाद अभिव्यंजना का दर्शन है।

ग) वक्रोक्तिवाद कवि कौशल है, अभिव्यंजनावाद में सहजानुभूति है।

घ) वक्रोक्तिवाद में अलंकार मान्य है, अभिव्यंजनावाद में उसकी सत्ता अमान्य है किन्तु आ जाने पर सहज उक्ति रूप में ही आते हैं।

ङ) वक्रोक्तिवाद मूर्त्त रूपों पर केन्द्रित है जबकि अभिव्यंजनावाद सूक्ष्म आध्यात्मिक क्रिया पर आधारित है।

च) वक्रोक्तिवाद में वस्तु की सत्ता उक्ति से पृथक है अभिव्यंजनावाद में दोनों अभिन्न है।



अपनी प्रगति जांचें

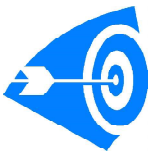
प्रश्न 1. कुंतक की वक्रोक्ति संबंधी विचारों पर प्रकाश डालिए।



11.6 सारांश

वक्रोक्ति एक व्यापक काव्य सिद्धांत है। इसके अंतर्गत कुंतक ने एक ओर वर्ण-चमत्कार, शब्द-सौंदर्य, अप्रस्तुत विधान, प्रबंध कल्पना आदि समस्त काव्यांगों का और दूसरी ओर अलंकार, रीति-ध्वनि और रस आदि सभी काव्य-सिद्धांतों का समाहार करने का प्रयास किया है। काव्य-सौंदर्य के समस्तरूप सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्ण चमत्कार और व्यापकरूप प्रबंध कौशल तक सभी वक्रता के प्रकार है। अलंकार, रीति आदि वक्रता के पोषक तत्व हैं। अत: वक्रोक्ति का प्रथम गुण उसकी व्यापकता है।

कुंतक रस को वक्रोक्ति का सबसे समृद्ध अंग मानते हैं, पर अंगी वक्रता ही है। इसके कारण ही रस के अभाव में भी वक्रता की स्थिति संभव है। इसमें संदेह नहीं है कि वक्रता काव्य का अनिवार्य माध्यम है परंतु वह उसका प्राण तत्व नहीं है। वक्रोक्तिवाद के इस सीमा के वाबजूद भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भारतीय काव्यशास्त्र में भी वक्रोक्ति को छोड़कर ध्वनि के अतिरिक्त इतना व्यवस्थित विधान किसी अन्य सिद्धांत का नहीं है।



11.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : वक्रोक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कुंतक ने कहा है- काव्य में शब्द और अर्थ अलंकार्य हैं तथा उन्हें शोभित करनेवाला तत्व है वक्रोक्ति। यह वक्रोक्ति ही काव्य का प्राणतत्व है।

जानने के लिए पढ़ें '**अवधारणा और स्वरूप**'।



11.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. काव्यालोचन- ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री', आर्य बुक डिपो, दिल्ली।

3. काव्यदर्पण- रामदहीन मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. भारतीय काव्यशास्त्र (भाग 1 और भाग 2)- बलदेव उपाध्याय, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।



11.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए-

1. कुंतक ने वक्रोक्ति के कितने भेद किए हैं?
2. टिपण्णी लिखिए-

   क) प्रबंध वक्रता ख) वर्णविन्यास वक्रता

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए-

1 वक्रोक्ति से आप क्या समझते हैं? काव्यशास्त्र में वक्रोक्ति का क्या महत्व है?
2. वक्रोक्ति के भेदों पर उदाहरण सहित आलोचना कीजिए?
3. वक्रोक्ति और अभिव्यंजना के साम्य-वैषम्य पर आलोचना कीजिए?

*** ***** ***

इकाई 12 : ध्वनि संप्रदाय-1

इकाई की रूपरेखा

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 ध्वनि का स्वरूप एवं अवधारणा

12.4 ध्वनि संप्रदाय के विकास और उनके प्रवर्तक

12.5 सारांश

12.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

12.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

12.8 अभ्यास प्रश्न

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से योग्य होंगे-

- ध्वनि के स्वरूप को लेकर।
- ध्वनि की अवधारणा से।
- ध्वनि संप्रदाय के प्रवर्तक और इसके विकास से।

12.2 प्रस्तावना

भारतीय काव्यशास्त्र में ध्वनि संप्रदाय का विशेष महत्व है। रीति और वक्रोक्ति सिद्धांत की भांति 'ध्वनि-सिद्धांत' भी काव्य की आत्मा का अनुसंधान करनेवाला सिद्धांत है। इसके अनुसार काव्य की आत्मा 'ध्वनि' है। संस्कृत आचार्य आनंदवर्धन ने इस सिद्धांत को व्यवस्थित किया। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' में इस सिद्धांत के बारे में उल्लेख किया। इससे पहले काव्यशास्त्र में तीन महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रतिष्ठित हो चुके थे। अत: ध्वनि सिद्धांत के अंतर्गत प्रबल एवं पुष्ट तर्कों के आधार पर ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए उक्त सभी सिद्धांतों का पुन: मूल्यांकन किया गया।

12.3 ध्वनि का स्वरूप एवं अवधारणा

ध्वनि शब्द का सामान्य अर्थ है कानों में सुनाई देनेवाला नाद या आवाज। जहाँ वाच्यार्थ प्रमुख न होकर व्यंग्यार्थ प्रमुख होता है, काव्यशास्त्र में उसे ही ध्वनि माना गया है।

ध्वनि को परिभाषित करते हुए आनंदवर्धन ने कहा है- 'जिस रचना में वाचक विशेष और वाच्य विशेष अपने अभिधेय अर्थ को गौण बनाकर (व्यंगार्थ) व्यक्त करते हैं, वह 'ध्वनि'

कहलाती है।' ध्वनि की व्युत्पत्तिमूलक परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं-

1. व्यंजक ध्वनि : 'ध्वनि ध्वनयति व यस: व्यंजक: शब्द: ध्वनि:।' अर्थात् ध्वनित होनेवाला व्यंजक शब्द ध्वनि है
2. व्यंजक अर्थ : 'ध्वनि ध्वनयति व यस व्यंजक अर्थ: ध्वनि:।' अर्थात् वह व्यंजक अर्थ ध्वनि है जो अन्य अर्थ को ध्वनित करें या कराए।
3. व्यंगार्थ : 'ध्वन्यते इति ध्वनि:।' अर्थात् जो ध्वनित हो उसे ध्वनि कहते हैं।
4. व्यंजना व्यापार : 'ध्वन्यते अनेन इति ध्वनि:।' अर्थात् जिसके द्वारा ध्वनित किया जाए वह ध्वनि है।
5. व्यंजना प्रधान काव्य : 'ध्वन्यते अस्मिन् इति ध्वनि:।' अर्थात् जिस काव्य में रस, अलंकार एवं वस्तु ध्वनित होते हैं, वह काव्य ध्वनि काव्य है।

इस तरह व्युत्पत्ति मूलक अर्थ में व्यंजक शब्द, व्यंजक अर्थ, व्यंगार्थ, व्यंजना व्यापार, व्यंजना प्रधान काव्य इनमें ध्वनि का विस्तार मिलता है।

आचार्य मम्मट ने भी ध्वनि को परिभाषित करते हुए इस प्रकार कहा है- जहाँ व्यंगार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा अतिशय उत्तम अर्थात् चमत्कारपूर्ण होता है, उसे ही विद्वानों ने ध्वनि कहा हैं।

व्याकरण का स्फोटवाद इसके मूल में है। जिस प्रकार शब्द से अलग-अलग वर्णों के उच्चारण से अर्थ की अभिव्यक्ति नहीं होती, उसी प्रकार अभिधा या लक्षणा के द्वारा भी सम्पूर्ण अर्थ और विशेष रूप से मार्मिक अर्थ की अभिव्यक्ति नहीं होती। यह मार्मिक अर्थ व्यंजना के द्वारा प्राप्त होता है। अभिधा और लक्षणा के उपरांत व्यंजना से ध्वनित होनेवाला चमत्कारिक अर्थ ही ध्वनि है।

12.4 ध्वनि संप्रदाय के विकास और उनके प्रवर्तक

संस्कृत काव्यशास्त्र में जिन आचार्यों ने काव्य की आत्मा के रूप में ध्वनि को स्वीकार किया है, उनके मतों के आधार पर यह संप्रदाय प्रचलित हुआ है-

आचार्य आनंदवर्धन - इस सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य 'आनंदवर्धन' है। उन्होंने इस बात को स्वीकारा हैं कि ध्वनि सिद्धांत की परम्परा उनसे पहले भी थी, किन्तु उसके पुष्ट प्रमाण न मिलने के कारण हम आनंदवर्धन को ही इस सिद्धांत के प्रथम आचार्य मानते हैं। जिन्होंने 9 वीं शताब्दी में ध्वनि सिद्धांत की स्थापना की है। उनके द्वारा रचित 'ध्वन्यालोक' नामक ग्रन्थ ही इस सिद्धांत का एकमात्र और प्रमुख ग्रन्थ है। उन्होंने ध्वनि को काव्य का आत्मा स्वीकार करते हुए कहा है -

'काव्यास्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्य:समाम्नातपुर्व-
स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।'

आनंदवर्धन ने रस, अलंकार, रीति आदि सभी के मूल में ध्वनि को ही स्वीकार करते

हैं और ध्वनि काव्य को ही उत्तम काव्य मानते हैं।

अभिनवगुप्त- आचार्य आनंदवर्धन द्वारा प्रतिपादित ध्वनि सिद्धांत का समर्थन करनेवाले आचार्यों में अभिनवगुप्त का स्थान महत्वपूर्ण है। 10 वीं तथा 11 वीं शताब्दी में अभिनवगुप्त ने 'ध्वन्यालोक' पर 'लोचन' नामक टीका लिखी थी। ध्वन्यालोक की यह टीका मूल ग्रंथों से भी अधिक सशक्त एवं लोकप्रिय सिद्ध हुई। अभिनवगुप्त रसवादी आचार्य थे। अत: रस की सम्यक पुष्टि के लिए उन्होंने ध्वनि सिद्धांत को महत्व प्रदान किया और सिद्ध किया की 'रस' वाच्य न होकर व्यंग्य होता है। इस प्रकार इन्होंने रस और ध्वनि की अभिन्न संबंध ही स्थापित नहीं किया बल्कि उन्होंने काव्य में रस ध्वनि को महत्व देते हुए वस्तु ध्वनि और अलंकार ध्वनि को भी रस की पोषक तत्व माना।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. ध्वनि संप्रदाय के विकास में अभिनवगुप्त के योगदान पर प्रकाश डालिए।

मम्मट- 11 वीं शताब्दी के मध्य में आचार्य मम्मट का काव्यशास्त्र के क्षेत्र में आगमन हुआ। तब तक कुछ आचार्यों द्वारा ध्वनि सिद्धांत का बहुत विरोध हो चूका था। लेकिन इसके विपरीत मम्मट ने ध्वनि सिद्धांत का विरोध करनेवाले मतों का विरोध करते हुए ध्वनि सिद्धांत का जोरदार समर्थन किया। उन्होंने 'काव्यप्रकाश' नामक ग्रन्थ में महत्वपूर्ण तत्वों के आधार पर संस्कृत काव्यशास्त्र में ध्वनि सिद्धांत की पुन: स्थापना की। उन्होंने ध्वनि को ही आधार बनाकर काव्य के तीन भेद स्वीकार किए- 1. ध्वनि काव्य 2. गुणीभूत काव्य 3. चित्र काव्य।

पंडित राज जगन्नाथ- जगन्नाथ को अंतिम ध्वनि समर्थक आचार्य माना जाता है। उन्होंने 'रसगंगाधर' में ध्वनि के आधार पर काव्य के चार भेद की स्थापना की है। प्राचीन ध्वनिवादी आचार्य 'रस' को केवल असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि प्रदत्व वाक्यगत ही मानते थे किन्तु पंडितराज ने 'रस' को संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि के अंतर्गत भी सिद्ध किया है।



महत्वपूर्ण बिंदु

- ध्वनि संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य आनंदवर्धन है।
- आचार्य मम्मट ने ध्वनि के आधार पर काव्य के तीन भेद स्वीकार किए हैं- ध्वनि काव्य, गुणीभूत काव्य और चित्र काव्य।



12.5 सारांश

भारतीय काव्यशास्त्र के विभिन्न सम्प्रदायों में से ध्वनि सम्प्रदाय भी एक महत्वपूर्ण संप्रदाय है। इस संप्रदाय की स्थापना आनंदवर्धन ने की थी, जिन्होंने ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। लेकिन आनंदवर्धन से पहले ही इस संप्रदाय का विकास हो चूका था। मगर इसे एक व्यवस्थित रूप देकर आनंदवर्धन ने 'रस ध्वनि' को सबसे श्रेष्ट माना। जबकि अभिनवगुप्त ने रस ध्वनि को 'ध्वनित' या 'अभिव्यंजित' माना है। ध्वनि विरोधी आचार्य मुकुल भट्ट, महिम भट्ट, कुंतक आदि की युक्तियों का खंडन कर मम्मट ने भी इस सिद्धांत की महत्वा को प्रतिपादन किया है। इसी कारण उन्हें 'ध्वनि प्रतिष्ठापक परमाचार्य' भी कहा जाता है।



12.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : आचार्य आनंदवर्धन द्वारा प्रतिपादित ध्वनि सिद्धांत का समर्थन करनेवाले आचार्यों में अभिनवगुप्त का स्थान महत्वपूर्ण है। 10 वीं तथा 11 वीं शताब्दी में अभिनवगुप्त ने 'ध्वन्यालोक' पर 'लोचन' नामक टीका लिखी। ध्वन्यालोक की यह टीका मूल ग्रंथों से भी अधिक सशक्त एवं लोकप्रिय सिद्ध हुई। अभिनवगुप्त रसवादी आचार्य थे। अधिक जानने के लिए देखें '**अभिनवगुप्त**'।



12.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. काव्यालोचन- ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री', आर्य बुक डिपो, दिल्ली।
3. काव्यदर्पण- रामदहीन मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. भारतीय काव्यशास्त्र (भाग 1 और भाग 2)- बलदेव उपाध्याय, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।



12.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए-

1. आचार्य मम्मट के अनुसार ध्वनि क्या है ?
2. ध्वनि संप्रदाय के प्रमुख आचार्यों का नाम उल्लेख कीजिए।

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए-

1. ध्वनि संप्रदाय पर एक आलेख प्रस्तुत कीजिए।
2. ध्वनि के अर्थ और स्वरूप को समझाते हुए, प्रमुख ध्वनिवादी आचार्यों की देन पर एक लेख प्रस्तुत कीजिए।
3. ध्वनि संप्रदाय के प्रवर्तक और उनके मतों को स्पष्ट कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 13 : ध्वनि संप्रदाय-2

इकाई की रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 शब्दशक्ति

- 13.3 1 अभिधा
- 13.3.2 लक्षणा
- 13.3.3 व्यंजना

13.4 व्यंजना के आधार पर ध्वनि काव्य के भेद

- 13.4.1 ध्वनि काव्य
- 13.4.2 गुणीभूत व्यंग्य
- 13.4.3 अवर काव्य

13.5 सारांश

13.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

13.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

13.8 अभ्यास प्रश्न

13.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप सीखेंगे -

- ध्वनिकाव्य के भेदों के बारे में।
- अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शब्दशक्ति के बारे में।
- गुणीभूत व्यंग्य के बारे में।

13.2 प्रस्तावना

ध्वनि काव्य वह विशिष्ट प्रकार का काव्य है, जिसमें शब्द और अर्थ अपने स्वरूप को छिपाये हुए उस अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, जो काव्य का परम रहस्य है। अत: यह विशिष्ट प्रकार का उत्तम काव्य है। आचार्य मम्मट ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है-

'इदमुत्तममतिशायिनी व्यंगे वाच्यादध्वनिर्बुधै: कथित।।'

वाच्यार्थ से अधिक उत्कृष्ट व्यंग्य ही विद्वानों के द्वारा ध्वनि कही गयी है। ध्वनिकाव्य का संबंध वाच्यार्थ, व्यंगार्थ आदि से है, अत: ध्वनि के स्वरूप को समझने के लिए 'शब्दशक्ति' का विश्लेषण करना जरूरी है।

13.3 शब्दशक्ति

महाभाष्य का कथन है कि 'प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनि-शब्द इत्युच्यते।' अर्थात् संसार में पदार्थ की प्रतीति करनेवाली ध्वनि को शब्द कहते हैं। जिस शक्ति से शब्द का अर्थगत प्रभाव का पता चलता है, उसे ही शब्दशक्ति कहा गया है। सीधे शब्दों में कहा जाय तो अर्थ-बोध करनेवाली शक्ति ही शब्दशक्ति है। इस शब्द-शक्ति पर भारतीय काव्यशास्त्र में वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। शब्द-शक्ति तीन प्रकार के होते हैं- अविधा, लक्षणा और व्यंजना। जिसका संबंध तीन प्रकार के शब्द- वाचक, लक्षक और व्यंजक तथा तीन प्रकार के अर्थ- वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंगार्थ से होते हैं। नीचे इन पर विचार उपलब्ध है-

13.3.1 अभिधा

अभिधा वह शब्द-शक्ति या शब्द का व्यापार है, जिसमें साक्षात सांकेतिक या मुख्य अर्थ का बोध होता है। मुख्य अथवा प्रथम अर्थ का बोध कराने के कारण इस अभिधा शक्ति को मुख्या या अग्रिमा भी कहते हैं। जिस शब्द से मुख्य अर्थ का बोध होता है, वह वाचक कहलाता है तथा उससे निकलनेवाला मुख्य अर्थ वाच्यार्थ होता है।

अभिधा शक्ति द्वारा जिन शब्दों की अभिव्यक्ति होती है, उसके तीन प्रकार माने गए हैं- रूढ़, यौगिक और योगरूढ़। रूढ़ शब्द वे हैं जिनकी कोई व्युत्पत्ति न हो सके; जैसे-गढ़, घर, तरु, घोड़ा, पशु आदि।

यौगिक वे शब्द हैं जिनकी व्युपत्ति हो सकती है अर्थात् जो प्रकृति और प्रत्यय के योग से बनते हैं। उदाहरण- तरुजीवी, पशुतुल्य, पाचक, नरपति आदि।

योगरूढ़ वे सबद हैं जो यौगिक होते हैं फिर भी उनका अर्थ रूढ़ होता है। अर्थात् प्रकृति और प्रत्यय का अलग-अलग अर्थ तो निकलता है, पर उससे शब्द का वास्तविक अर्थ न निकलकर एक विशिष्ट अर्थ निकलता है। उदाहरण- पंकज, पशुपति, चक्रधर आदि।

वाचक शब्द से जो सांकेतिक अर्थ निकलता है, वह भी चार प्रकार के माने जाते हैं- जातिरूप अर्थ, गुणरूप अर्थ, क्रियारूप अर्थ और यदुच्छारूप अर्थ। परंतु मीमांसक केवल जातिरूप के अर्थ को ही स्वीकारते हैं। जातिवाचक शब्द जाति के द्योतक होते हैं। जैसे- गाय, पक्षी, वृक्ष आदि। गुणवाचक शब्द गुण का बोध कराते हैं। जैसे- सौरभ, माधुर्य आदि। क्रियावाचक शब्द क्रिया का बोध कराते हैं। यदुच्छा-शब्द संज्ञा शब्द हैं जो द्रव्य या व्यक्ति का बोध कराते हैं।

भट्ट नायक ने अभिधा को महत्व प्रदान करते हुए कहा है कि उनकी दृष्टि से रस की अनुभूति कराने में अभिधा शक्ति ही प्रधान है। अत: भट्ट नायक के अनुसार अभिधा ही मुख्य शब्द शक्ति है।

13.3.2 लक्षणा

मुख्यार्थ या वाच्यार्थ में बाधा या व्याघात होने पर रूढ़िया प्रयोजन के सहारे उससे संबंधित, जहाँ पर अन्य अर्थ लक्षित होता है, वहाँ पर लक्षणा शक्ति काम करती है। एक उदाहरण प्रस्तुत है- ''मेरा कुत्ता शेर का मामा है।'' यहाँ पर मुख्यार्थ बाधित है। कुत्ता शेर का मामा कैसे हो सकता है? फिर भी प्रयोजन के सहारे यह अर्थ निकला कि आवाज में और भयंकरता में शेर से बढ़कर है। इस प्रकार लक्षणा से संबंधित तीन बातें हैं- 1. मुख्यार्थ या वाच्यार्थ की बाधा, 2. रूढ़ि या प्रयोजन और 3. उससे संबंधित अन्य अर्थ। इन्हीं तीनों के आधार पर लक्षणा के भेदों का विस्तार हुआ है। लक्षणा के निम्नलिखित भेद होते हैं-

1. रूढ़ि, रूढ़िमती, रूढ़िमूला
2. प्रयोजनवती, प्रयोजनमूला, स्वारसिका, फललक्षणा।

रूढ़ि लक्षणा- मुख्यार्थ को छोड़कर जहाँ पर रूढ़ि या प्रचलन के कारण अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है, वहाँ रूढ़ि लक्षणा होती है; जैसे-

'यह तेल शीतकाल में उपयोगी है।' तेल का अर्थ वास्तव में होता है तिल से निकला हुआ। पर यहाँ पर सरसों के तेल से तात्पर्य है।

प्रयोजनवती लक्षणा : इस लक्षण में मूलतः दो भेद नजर आते हैं- 1. एक गौणी लक्षणा और 2. एक शुद्धा लक्षणा।

जहाँ पर मुख्य अर्थ की बाधा होने पर सादृश्य संबंध के आधार पर अर्थात् समान रूप, गुण या धर्म के द्वारा अन्य अर्थ ग्रहण किया जाय, वहाँ पर गौणी लक्षणा होती है। उदाहरण-

'पग पग मग आगमन परति, चरण अरुण दुति झुलि।
ठौर ठौर लखियत उठे, दुपहरिया से फूलि।'

जहाँ पर मुख्य अर्थ की बाधा होने पर सादृश्य के अतिरिक्त अन्य संबंधों के द्वारा उसे ग्रहण किया जाय, वहाँ पर शुद्धा लक्षणा होती है। उदाहरण-

'मेरे सर पर क्यों बैठते हो?
पानी में घर बनाया है, तो सर्दी लगेगी ही।'

13.3.3 व्यंजना

व्यंजना का शब्दार्थ है विशेष रूप से सष्ट करना, खेलना या विकसित करना। अभिधा और लक्षणा शक्तियों के अपना अर्थबोध कराने के बाद जिस शक्ति से अन्य अर्थ का बोध होता है, उसे व्यंजना कहते हैं। इस प्रकार के शब्द को व्यंजक और अर्थ को व्यंगार्थ कहा जाता है। उदाहरण- 'घर गंगा में है।' इसका अर्थ देने में अभिधा

असमर्थ है, क्योंकि घर गंगा में नहीं हो सकता। परंतु इसका अर्थ व्यंजना से ही संभव होता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

'तरु पर द्विज बैठो।'

यहाँ द्विज का अर्थ ब्राह्मण न होकर पक्षी है।

व्यंजना के भेद शब्द और अर्थ दोनों ही का व्यापार व्यंजना में रहता है, इस कारण व्यंजना के दो रूप सामने आते हैं- शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना। वास्तव में सुविधा के लिए ये भेद किया गया है। जहाँ पर शब्दविशेष के कारण व्यंगार्थ निकलता है और उस शब्द के स्थान पर अन्य शब्द रखने से अर्थ न निकले वहाँ पर शाब्दी व्यंजना मानी जाती है। दूसरी ओर जहाँ पर कोई भी शब्द क्यों न हो, अर्थ में अंतर नहीं पड़ता, वहाँ पर आर्थी व्यंजना मानी जाति है।

13.4 व्यंजना के आधार पर ध्वनि काव्य के भेद

व्यंजना की प्रधानता के आधार पर ध्वनि सिद्धांत के अंतर्गत काव्य के तीन भेद किए गए हैं- ध्वनि काव्य, गुनिभुत व्यंग्य और अवर।

13.4.1 ध्वनि काव्य

जिस काव्य में वाच्यार्थ से अधिक चमत्कारपूर्ण व्यंगार्थ होता है, वह ध्वनि-काव्य है। इसे उत्तम काव्य माना गया है। जहाँ पर वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंगार्थ गौण या कम चमत्कार पूर्ण होता है, वह गुणीभुत व्यंग काव्य होता है। यह मध्यम श्रेणी का काव्य है। जहाँ पर व्यंगार्थ नहीं होता, वह काव्य साधारण या अवर माना जाता है।

पंडितराज जगन्नाथ के अलावा अधिकांश ध्वनिवादी विद्वानों ने इस वर्गीकरण को स्वीकारा है। वे व्यंगार्थ के सभी प्रकार को उत्तम कोटि में ही रखते हैं। उनके मतानुसार उत्तमोत्त- ध्वनिकाव्य, उत्तम-गुनिभुत व्यंग, मध्यम-अन्य अर्थालंकार काव्य तथा अवर- शब्दालंकार चित्रकाव्य होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है की ध्वनि व्यंगार्थ पर निर्भरशील है।

व्यंगार्थ वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ पर आश्रित रहता है, अत: ध्वनि भी अभिधा और लक्षण पर आधारित है। ध्वनि के मुख्यत: दो भेद हैं- लक्षणामूला ध्वनि और अभिधामूला ध्वनि।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. अभिधा, व्यंजना और लक्षणा शब्दशक्ति पर अपना विचार प्रकट कीजिए।

लक्षण ध्वनि या अविवक्षित वाच्यध्वनि- अधिक चमत्कारक व्यंगार्थ में जहाँ पर वाच्यार्थ की विवक्षा या प्रयोजन नहीं रहता, वहाँ पर अविवक्षित वाच्यध्वनि होती है। यहाँ व्यंगार्थ लक्षार्थ पर आश्रित रहता है, अत: यह लक्षनामुला ध्वनि कहलाती है। इसके दो भेद हैं- अर्थान्तरसंक्रमित और अत्यंततिरस्कृत।

अभिधामूला (विवक्रितान्यापरवाच्य) ध्वनि- जिस ध्वनि में वाच्यार्थ की विवक्षा हो अर्थात् वाच्यार्थ वांछनीय और प्रयोजनीय हो और वह अन्यपरक या व्यंग्यनिष्ठ हो, वह विवक्षितान्यपरावाच्य ध्वनि है। इस ध्वनि में व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ पर आश्रित रहता है। इसके भी दो भेद हैं- संलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि और असंलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि।

13.4.2 गुणीभूत व्यंग्य

जहाँ पर वाच्यार्थ की तुलना में व्यंगार्थ प्रधान या अधिक महत्वपूर्ण न होकर गौण होता है, वहाँ पर गुणीभूत व्यंग होता है। जगन्नाथ इसे उत्तम कोटि के अंतर्गत मानते हैं, क्योंकि इस काव्य में व्यंग्यार्थ का अस्तित्व सामने आता है। गुणीभूत व्यंग्य के साधारणत: आठ भेद माने जाते हैं-

1. अगूढ़ व्यंग्य
2. अपारंग व्यंग्य
3. वाच्यसिद्ध्यंग व्यंग्य
4. अस्फुट व्यंग्य
5. संदिग्धप्राधान्य व्यंग्य
6. असुंदर व्यंग्य
7. तुल्यप्राधान्य व्यंग्य
8. कक्काक्षिप्त व्यंग्य

13.4.3 अवर काव्य

अवर काव्य में अलंकार चित्रकाव्य रहता है। इसमें व्यंग्यार्थ नहीं रहता। अलंकार, शब्द-योजना आदि का ही सौंदर्य ऐसी रचना में देखा जाता है। ध्वनि की दृष्टि से इस काव्य का सबसे कम महत्व है।



13.5 सारांश

भारतीय काव्यशास्त्र में ध्वनि संप्रदाय भी बाकि सम्प्रदायों की तरह विशेष महत्व रखता है। इस संप्रदाय का मुख्य रूप ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, रसगंगाधर, काव्यनिर्णय,

काव्यदर्पण आदि ग्रंथों के आधार पर है। उल्लेखनीय है कि ध्वनि संप्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि इसने अपने अंतर्गत रस, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति आदि समस्त काव्यसिद्धान्तों के मूल तत्व को अपने में समावेश कर लिया है। इसके साथ ही इसका प्रतिपादन भी विस्तार के साथ हुआ और खंडन-मंडन द्वारा यह अत्यंत पुष्ट होकर एक सर्वमान्य काव्यसंप्रदाय के रूप में प्रतिष्ठा लाभ की।



13.6 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : अभिधा वह शब्द-शक्ति या शब्द का व्यापार है, जिसमें साक्षात सांकेतिक या मुख्य अर्थ का बोध होता है। मुख्य अथवा प्रथम अर्थ का बोध कराने के कारण इस अभिधा शक्ति को मुख्या या अग्रिमा भी कहते हैं। उत्तर जानने के लिए '**अभिधा**', '**व्यंजना**', और '**लक्षणा**' को ध्यानपूर्वक पढ़ें।



13.7 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. काव्यालोचन- ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री', आर्य बुक डिपो, दिल्ली।
3. काव्यदर्पण- रामदहीन मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. भारतीय काव्यशास्त्र (भाग 1 और भाग 2)- बलदेव उपाध्याय, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।



13.8 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए-

1. शब्दशक्ति कितने प्रकार के हैं? प्रत्येक का नाम उल्लेख कीजिए।
2. अभिधा शब्दशक्ति किसे कहते हैं?
3. अवर काव्य किसे कहते हैं?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए-

1. ध्वनिकाव्य से आप क्या समझते हैं? ध्वनिकाव्य में शब्दशक्ति की महत्व पर एक लेख प्रस्तुत कीजिए।
2. व्यंजना के आधार पर ध्वनिकाव्य के क्या-क्या भेद है- विस्तृत रूप से लिखिए।
3. गुणीभूत व्यंग्य से आप क्या समझते हैं? इसके भेदों पर सोदाहरण लेख प्रस्तुत कीजिए।

*** ***** ***

इकाई 14 : औचित्य संप्रदाय

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 स्वरूप

14.4 प्रमुख स्थापनाएँ

14.5 औचित्य भेद

14.6 सारांश

14.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

14.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

14.9 अभ्यास प्रश्न

14.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप –

- औचित्य का अर्थ और स्वरूप को जानेंगे।
- औचित्य संप्रदाय के प्रवर्तक और इसके समर्थक विद्वानों से परिचय प्राप्त करेंगे।
- औचित्य के भेदों से अवगत होंगे।

14. 2 प्रस्तावना

औचित्य सिद्धांत भारतीय काव्यशास्त्र सिद्धांतों में सबसे नवीन है तथा इसे संस्कृत काव्यशास्त्र का अंतिम सिद्धांत भी कहा जा सकता है। औचित्य संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य क्षेमेन्द्र को माने जाते हैं। यद्यपि इनसे पहले भी औचित्य संप्रदायपर चर्चा हो चुकी थी, मगर इसे व्यवस्थित करने का श्रेय क्षेमेन्द्र को ही जाता है। इनका समय 11 वीं शताब्दी को माना जाता है। औचित्य सम्प्रदाय को लेकर इन्होंने 'औचित्य विचार चर्चा' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की। उन्होंने रससिद्ध काव्य का प्राणतत्व औचित्य को मानते हुए लिखा हैं–

'औचित्य रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितं।'

क्षेमेन्द्र ने उचित भाव को औचित्य मानकर लिखा हैं–

'उचित्सय भावञ औचित्यम्।' जिससे यह भी अर्थ निकाला जा सकता है कि काव्य में प्रत्येक काव्य तत्व का उचित रूप से प्रयोग को ही औचित्य कहलाता है।

14.3 स्वरूप

औचित्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य क्षेमेद्र ने कहा कि जो पदार्थ जिसके सदृश अथवा अनुरूप होता है, उसे प्राचीन आचार्यों ने उचित कहा है; इसी उचित को विद्वानों ने औचित्य कहा है और यही काव्य का जीवन है –

'उचित प्राहुराचार्य: साद शं किल यस्त यात।
उचित छ यो भागस्तदौचित्य प्रचक्षते।।'

क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य विचार चर्चा में औचित्य का व्यापक एवं विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों की अपेक्षा औचित्य को ही काव्य का महत्वपूर्ण तत्व स्वीकारा है।

यहाँ क्षेमेन्द्र ने औचित्य का व्युत्पत्तिपरक अर्थ स्पष्ट कर ही विश्राम पा लिया है, जिससे उसका सम्यक एवं पूर्ण स्वरूप अध्येता के सामने स्पष्ट नहीं होता। यदि गंभीरता से विचार किया जाय तो स्पष्ट होता है कि औचित्य काव्य के विभिन्न तत्वों तथा उनकी समुचित एवं संतुलित नियोजना से संबंध रखने वाली विचारधारा है। औचित्य के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करने के लिए उसका उदाहरण सहित विवेचन अधिक उपयोगी होगा। औचित्य से पूर्व अनौचित्य का उदाहरण ले लेने से यह स्थिति अधिक स्पष्ट हो जाएगी। अत: अलंकार औचित्य का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

''उधर टेबुल पर बैठी है
पीलिया के रोगी सी
घंसी–घंसी आँखों वाली
आफिस गर्ल्स–
कोठों पर रात गुजारकर सुबह–सुबह सोई
थकी वेश्यायों की तरह।''

इन पंक्तियों में कवि ने आफिस गर्ल्स का चित्र अंकित किया है। कवि ने ऑफिस गर्ल्स की शारीरिक कृशता, अस्वस्थता, रूग्णता आदि के साथ उसके जीवन में विद्यमान देन्यता, विषद आदि को स्वर दिया है। उसके जीवन में प्रसन्नता, प्रफुल्लता, आशा एवं उल्लास आदि का नितांत अभाव है। यथार्थपरक चित्र अंकित करने से कवि को सफलता भी मिली है, लेकिन उपमान के अनौचित्य ने उसे धूलि–धूसरित कर दिया है। जीवन के दैन्य एवं विषाद की अभिव्यक्ति सहानुभूतिपूर्वक की जानी चाहिए थी, कवि को ऐसा उपमान रखना चाहिए था जो दीनता को अधिक साकार कर पाता। इसके विपरीत कवि ने घृणा उत्पन्न करनेवाला अप्रस्तुत रखा है, जिससे देन्य एवं विषाद की अभिव्यक्ति में कोई सहायता नहीं मिलती। यह अप्रस्तुत अनौचित्यपूर्ण है, जिसने काल के समस्त प्रभाव को धूमिल कर दिया है।

औचित्य के सवरूप के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि यह अवयव और अवयवी अथवा अंग और अंगी का सामंजस्य या एक प्रकार का संतुलन है। क्षेमेन्द्र ने औचित्य की स्थिति

दो रूपों में माने हैं- भावात्मक और अभावात्मक। काव्य में साधनों का उचित प्रयोग भावात्मक स्थिति है, जिसे उचित भाव कहा जाता है। काव्य में साधनों के अनुचित प्रयोग का निषेध अभावात्मक है।



अपनी प्रगति जांचें

प्रश्न 1. औचित्य संप्रदाय के स्वरूप पर विचार कीजिए।

क्षेमेन्द्र के अनुसार काव्य में चमत्कार और चारुता उत्पन्न करने का प्रमुख कार्य औचित्य का है। उन्होंने रस की उत्पत्ति का कारण भी औचित्य को ही बताया। वह रस और औचित्य का संबंध आत्मा और जीव का संबंध मानते हैं। सच्चाई तो यह है कि रस और औचित्य एक दुसरे पर निर्भर हैं। औचित्य के बिना रस की प्रतीति नहीं होती। इसी प्रकार बिना रस के औचित्य की स्थिति नहीं है।

14.4 प्रमुख स्थापनाएँ

क) भरतमुनि- आचार्य भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में औचित्य पर चर्चा तो नहीं की लेकिन व्यवहार में उन्होंने औचित्य पर अवश्य बल दिया। इस पुस्तक में उन्होंने कई बार औचित्य तथा अनौचित्य शब्दों का प्रयोग किया हैं। वे काव्य में औचित्य को बनाये रखने के लिए अनौचित्य से बचने की प्रेरणा देते हैं।

भरत ने अनेक स्थलों पर औचित्य की ओर संकेत करते हैं। उनके अनुसार आयु के अनुसार वेश, वेश के अनुसार गति तथा गति के अनुसार पाठ्य और पाठ्य के अनुसार अभिनय होना चाहिए।

'वयः अनुरूपः प्रथमस्तु वेशः वेशः अनुरुपश्च गति प्रसारः।
गति-प्रसारानुगतं च पाठ्यं
पाठ्यानुरुपोह्य भिनयश्चकार्यः।'

ख) भामह - अलंकारवादी आचार्य भामह ने भी स्पष्ट कहा है कि जिन बातों को काव्य दोष कहा जाता है यदि काव्यादि में उनका औचित्यपूर्ण प्रयोग किया जाए तो वे दोष न बनकर गुण बन जाया करते हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं कि विशेष सन्निवेश अर्थात् औचित्यपूर्ण विधान होने पर दोषपूर्ण उक्ति भी उसी प्रकार शोभाजनक हो जाती है जिस प्रकार माला के बीच में रखा हुआ नील पलाश।

इसी बात को स्पष्ट करते हुए कोई अन्य उदाहरण में वे कहते हैं कि सुन्दर नारी के नेत्रों में काजल भी शोभित होता है-

'कांता विलोचनन्यतस्तं मलीमसमिवांगजनम।'

ग) दंडी – आचार्य दंडी ने औचित्य के स्थान पर 'दोष-परिहार' शब्द का प्रयोग किया है। अनुचित संयोग से दोष उत्पन्न होते हैं। दंडी ने स्पष्ट कहा है–

'विरोधः सकलोह्यप्येष कदाचित् कवि कौशलात।
उत्क्रम्य दोषगाणनां गुण वीथी विगाहते।।'

अर्थात् कवि कौशल के सन्निवेश से दोष भी अपना मार्ग छोड़कर गुणों का मार्ग ग्रहण कर लेते हैं।

घ) यशोवर्मन – यशोवर्मन ने अपने नाटक 'रामाभ्युदय' में पहलीबार 'औचित्य' शब्द का उल्लेख किया था। उन्होंने वचन, रस, कथन तथा शब्दों के औचित्य की चर्चा की है।

ङ) भोज – आचार्य भोज ने 'श्रृंगार प्रकाश' में औचित्य पर प्रकाश डाला है। भोज ने नाटक के तीन गुण स्वीकार किए हैं– वचनौचित्य, पात्रौचित्य तथा भावौचित्य।

च) उद्भट – उद्भट ने ऊर्जस्वी अलंकार के निरूपण में औचित्य का उल्लेख किया है। उनका भाव यह है कि अनौचित्यपूर्ण रस-भाव आदि के प्रयोग में ऊर्जस्वी एवं उसके औचित्यपूर्ण बोध में रस, भाव की स्थिति होती है।

छ) रुद्रट – संस्कृत काव्यशास्त्र में रुद्रट पहले आचार्य है जिन्होंने यशोवर्मन के पश्चात 'औचित्य' शब्द का प्रयोग किया। उन्होंने अपनी रचना 'काव्यालंकार' के प्रथम अध्याय में छन्दौचित्य, द्वितीय में रीति तथा वृत्ति औचित्य, तृतीय में अलंकारौचित्य, षष्ठ में वक्ता तथा विषय संबंधी औचित्य तथा एकादश अध्याय में जाति, वंश, विद्या, वित्त, देश-स्थान तथा पात्रादि के औचित्य के बारे में चर्चा की है।

ज) आनंदवर्धन – यशोवर्मन तथा रुद्रट के पश्चात आनंदवर्धन ने भी 'औचित्य' शब्द का स्पष्ट उल्लेख किया। उन्होंने काव्य के सभी तत्वों अलंकार, रीति, वृत्ति तथा गुण आदि की उपयोगिता रसाभिव्यक्ति में सहायक होने में स्वीकार की। साथ ही साथ औचित्य को रसाभिव्यक्ति का आधार माना।



महत्वपूर्ण बिंदु

- औचित्य सिद्धांत को संस्कृत काव्यशास्त्र का अंतिम सिद्धांत माना जाता है।
- दंडी ने औचित्य शब्द के लिए' दोष-परिहार' शब्द का इस्तेमाल किया है।

14.5 औचित्य भेद

क्षेमेद्र ने औचित्य के कुछ भेद स्वीकार किए हैं– पदौचित्य, वाक्यगत, प्रबंधगत, अलंकारगत, रसगत, क्रियागत, विशेषणगत, देशकालगत, नामगत, प्रसंगगत, बिम्बगत, और विचारगत। नीचे इनपर चर्चा की गयी हैं–

पदगत औचित्य- जहाँ किसी पद के प्रयोग में विशेष औचित्य प्रगट होता हो, उसे पदगत औचित्य कहा जा सकता है। उदाहरण-

'बतरस लालच लाल के, मुरली दई लुकाय।
सौंह करै, भौंहन हँसे, दैन कहै नटि जाय।।'

वाक्यगत- जहाँ किसी काव्य में वाक्य के प्रयोग का विशेष चमत्कार होता है, वहाँ वाक्यगत औचित्य होता है।

प्रबंधगत औचित्य- जहाँ किसी कथा-प्रबंध के बांधने के कारण विशिष्ट चमत्कार उत्पन्न होता है, वहाँ प्रबंधगत औचित्य होता है।

अलंकारगत औचित्य- जहाँ अलंकार प्रयोग के द्वारा कोई वस्तु, भाव या विचार विशेष रूप से प्रभावशाली हो उठता है, वहाँ अलंकारौचित्य माना जाता है।

रसगत औचित्य- जहाँ किसी रस के प्रयोग से काव्य की पंक्तियाँ विशेष रूप से प्रभावी हो जाती हैं, वहाँ रसगत औचित्य माना जाता है।

क्रियागत- जहाँ पर क्रियापदों के प्रयोग से काव्य में विशेष चमत्कार और प्रभाव आ जाता है, वहाँ क्रियागत औचित्य माना जाता है।

विशेषणगत औचित्य- जहाँ विशेषण पदों के प्रयोग से काव्य-पंक्तियों में विशेष चमत्कार उद्भासित हो जाये, वहाँ विशेषणगत औचित्य माना जाता है।

देशकालगत औचित्य- जहाँ देश और काल के वर्णन से विषय में विशेष चमत्कार आ जाता हो, वहाँ देशकाल-औचित्य होता है।

बिम्बगत औचित्य- जहाँ बिम्बों के संयोजन से उनके औचित्य द्वारा काव्य में विशेष चमत्कार आ जाता है, वहाँ बिंब औचित्य माना जाता है।

नाम औचित्य- जहाँ किसी विशिष्ट नाम के कारण अर्थ की विशेष व्यंजना होती हो, वहाँ नाम औचित्य होता है।

विचारगत औचित्य- जहाँ किसी विचार के कारण काव्य में विशेष चमत्कार आता है, वहाँ विचारगत औचित्य होता है।

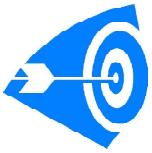
प्रसंगगत औचित्य- जहाँ किसी प्रसंग के संयोजन से अर्थ में चमत्कार आता है, वहाँ प्रसंगगत औचित्य होता है। यथा-

'लगता आज भी यह तेज चिनगारी
गिरी थी ज्यों उदास 'अशोक बन में'
मुद्रिका प्यारी।'



14.6 सारांश

आचार्य क्षेमेद्र ने औचित्य मत का प्रतिपादन कर उसे काव्य के प्राणतत्व के रूप में प्रतिष्ठा किया है। काव्य के सही रूप में प्रभावशाली होने के लिए ही उसके विविध तत्वों में औचित्य का समावेश होना आवश्यक है। औचित्य में वह गुण है जिसके होने पर काव्य में अन्य विविध गुणों और चमत्कारों का विकास होता है। उल्लेखनीय है कि काव्य की कोई भी विशेषता या गुण क्यों न हो उसके संपादन में तथा उसे प्रभावशाली बनाने में औचित्य का निर्वाह परमावश्यक है।



14.7 प्रगति विवरण (केवल रूपरेखा)

प्रश्न 1 का उत्तर : औचित्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य क्षेमेद्र ने कहा कि जो पदार्थ जिसके सदृश अथवा अनुरूप होता है, उसे प्राचीन आचार्यों ने उचित कहा है; इसी उचित को विद्वानों ने औचित्य कहा है और यही काव्य का जीवन है –

'उचित प्राहुराचार्य:साद शं किल यस्त यात।
उचित छ यो भागस्तदौचित्य प्रचक्षते।।'

समझने के लिए ऊपर दिए हुए '**स्वरूप**' को ध्यानपूर्वक पढ़ें।



14.8 अधिक जानने के लिए पढ़ें

1. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
2. काव्यालोचन- ओमप्रकाश शर्मा 'शास्त्री', आर्य बुक डिपो, दिल्ली।
3. काव्यदर्पण- रामदहीन मिश्र, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
4. भारतीय काव्यशास्त्र (भाग 1 और भाग 2)- बलदेव उपाध्याय, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।



14.9 अभ्यास प्रश्न

(क) संक्षिप्त प्रश्नों का उत्तर दीजिए -

1. औचित्य संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कौन है ?
2. आचार्य दंडी ने औचित्य के स्थान पर किस शब्द का प्रयोग किया है ?
3. श्रृंगार प्रकाश किसकी रचना है ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर लिखिए -

1. औचित्य से आप क्या समझते हैं ? इसके स्वरूप पर विचार कीजिए।
2. औचित्य संप्रदाय के प्रवर्तक कौन है ? औचित्य भेद पर आलोचना कीजिए।
3. औचित्य संबंधी विभिन्न विद्वानों के मतों पर आलोचना कीजिए।

*** ***** ***